

अध्याय ३६ के मंत्रोंके ऋषि और देवताओंकी सूची

मंत्र	यजुर्वेदमें ऋषि और देवता	ऋग्वेदमें ऋषि और देवता
१ ऋचं वाचं प्रपद्ये०	दध्यद् } आथर्वणः }	अग्निः —०X०— —०X०—
२ यन्मे च्छिद्रं चक्षुषो०	”	वृहस्पतिः —०X०— —०X०—
३ तत्सवितुर्वरेण्यम्०	विश्वामित्रः	सविता विश्वामित्रः सविता
४ कया नश्चित्र आभुव०	वामदेवः	इन्द्रः वासदेवः इन्द्रः
५ कस्त्या सत्यो मदा०	”	” ” ”
६ अमीषु णः सखीनां०	”	” ” ”
७ कया त्वं न ऊत्या०	दध्यद् } आथर्वणः }	” सुकक्षः ”
८ इन्द्रो विश्वस्य राजति०	”	” —०X०— —०X०—
९ शं नो मित्रः शं वरुणः०	”	मित्रादयः गोतमो } राहूगण- } विश्वेदेवाः पुत्रः }
१० शं नो वातः पवतां०	”	वातादयः —०X०— —०X०—
११ अहानि शं भवन्तु०	”	अहरादयः —०X०— —०X०—
१२ शं न इन्द्रामि भवतां०	”	इन्द्राभ्या- वसिष्ठः विश्वेदेवाः दयः }

मंत्र	यजुर्वेदमें ऋषि और देवता	ऋग्वेदमें ऋषि और देवता
१२ शं नो देवी रमिष्ठ्य०	”	आपः
१३ स्योना पृथिवी नो भ०	मेधातिथिः } काण्वः }	पृथिवी
१४ आपो हि ष्ठा मयोभु०	त्रिशिरास्त्वा- } ष्ट्रः सिंधुद्वीपो } वा आंवरीषः }	आपः
१५ यो वः शिवतमो र०	”	”
१६ तस्मा अरं गमाम०	”	”
१७ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं०	दध्यद् } आथर्वणः }	ईश्वरः
१८ दृते दृह मा मित्रस्य०	”	”
१९ दृते दृह मा ज्योक्ते०	”	”
२० नमस्ते हरसे शोचिषे०	लोपामुद्रा	अग्निः
२१ नमस्ते अस्तु विद्युते०	दध्यद् } आथर्वणः }	ईश्वरः
२२ यतो यतः समीहसे०	”	”
२३ सुमित्रिया न आप०	”	सोमः
२४ तच्चक्षुर्देव हितं पुर०	”	सूर्यः

जो मंत्र ऋग्वेदमें नहीं आया उसके स्थान पर ०×० ऐसा चिन्ह दिया है, और जिसका ऋषि और देवता पूर्व मंत्रके अनुसार है उस स्थानपर ” ऐसा चिन्ह रखा है ।

इस कोष्टक को देखनेसे पता लगता है कि, इस अध्याय के २४ मंत्रों में से १२ मंत्र ऋग्वेदमें हैं, किसीकिसी मंत्रमें कुछ थोड़ासा भेद भी है। तथा ऋषिनामोंमें बड़ा भेद है। देवताओंका विशेष-तया कोई भेद नहीं। “विश्वे-देवाः” देवताका तात्पर्य इतनाही होता है, कि विश्वेदेवा के मंत्रोंमें अनेक देवता हुआ करते हैं। (विश्वे) अनेक (देवाः) देवतावाले मंत्रोंकी विश्वेदेवा देवता होते हैं। इस प्रकार अ. ३६ के मं. ९-११ की विश्वेदेवा देवता है, अर्थात् इन मंत्रोंमें अनेक देवताओंके नाम आये हैं। ऋग्वेदमें जिसको ‘विश्वे-देवाः’ कहा, यजुर्वेदमें ‘अश्यादयः, मित्रादयः अथवा लिंगोक्ताः’ कहा तो कोई भिन्न देवता नहीं हुए। “लिंगोक्ताः” का अर्थही यह है कि, मंत्रमें जो देवताओंके चिन्ह होंगे उन (लिंग) चिन्होंद्वारा (उक्त) प्रकट होनेवाले सब देवता वहां लिये जाते हैं। अस्तु। इस प्रकार ऋग्यजुमें देवताभेद नहीं। परंतु उक्त कोष्टकमें ऋषिभेद अवश्य है।

ऋषिनामोंका भेद।

इस ऋषिभेदकी सब जिम्मेवारी अजमेरके वैदिक प्रेसके संचालकों पर है। संशोधन किये बिना ही मनमानी बातें छापकर प्रकाशित करनेका साहस इन पुस्तकोंमें बहुत है। वैदिकप्रेसके छपे हुए ऋग्वेद और यजुर्वेद देखनेसे पता लगेगा कि, बिना कारण और बिना आधार ऋषियोंके नाम उलट पलट किये हैं, और कई स्थानोंपर देवताओंका भी वैसा ही हाल किया है। मैंने इसका थोड़ासा वर्णन “ईशोपनिषद्के स्वाध्याय” नामक पुस्तकमें किया है, और वही बात ऊपर दिये हुए कोष्टकसे प्रतीत होती है। इसलिये ऋषिनामोंका निश्चय विद्वानोंको करना चाहिए। और जहांतक हो सके वहांतक प्राचीन परंपराको तोड़ना नहीं चाहिए। मेरे विचारसे ऋग्वेदके दिए हुए ऋषियोंके नाम अधिक विश्वासके योग्य हैं। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है:—

दध्यङ्ङु ह वाऽआथर्वण एतं शुक्रं

एतं यज्ञं वेद ॥

-शतपथ. १४।१।१।२०

“आथर्वण दधीची ऋषीने इस शुक्र-(अध्याय ३६) और इस यज्ञको जाना।” इस शतपथके वचन से यह संपूर्ण अध्याय अथवा ३६ से ४० तक के पांच अध्याय आथर्वण दधीचीके देखे हुए माने जाते हैं। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं की, इन पांच अध्यायके संपूर्ण मंत्रोंका द्रष्टा दधीची है, उक्त शतपथके वचन में “शुक्र और यज्ञ” ये दो शब्द हैं; दोनोंसे यह तात्पर्य नहीं निकलता कि दधीची ऋषिके देखे हुए उक्त पांच अध्याय हैं। इस पंचाध्यायीमें “तत्सवितुर्वरेण्यं” मंत्र विश्वासित्रका देखा हुआ प्रसिद्ध है। इस प्रकार अन्य मंत्र अन्य ऋषियोंके देखे हुए हैं। उक्त शतपथ वचनका और उक्त सर्वानुक्रमणी सूत्रका तात्पर्य इतनाही है कि, इन अध्यायोंमें दधीची ऋषिके देखे हुए मंत्र, अन्य ऋषिवाले मंत्रोंकी अपेक्षा, संख्यामें बहुत हैं। जिस अध्यायमें जिस ऋषिके देखे हुए मंत्रोंकी संख्या अधिक होती है, उस अध्यायका मुख्यतया वह ऋषी माना जाता है, यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए।

ऋषियोंके द्रष्टृत्वका क्या तात्पर्य है और उसका अर्थके साथ कोई विशेष संबंध है वा नहीं, इसका ठीक ठीक विचार वेदोंका स्वाध्याय पूर्ण होनेपर ही होगा। संपूर्ण वेदोंका अध्ययन होनेसे पूर्व उक्त प्रश्नोंका उत्तर देना साहस का कार्य है। वेदोंको ‘ईश्वरका काव्य’ मानकर पढ़ना चाहिए। क्योंकि कहा है:—

पश्य देवस्य काव्यं

न ममार न जीर्यति ॥ अथर्व. १०।८।३२॥

“ईश्वरका यह काव्य देखो। जो कभी मरता नहीं और न जीर्ण होता है।” देवके काव्यका यह प्रताप है। इसका अनुभव

जिस महापुरुषको प्राप्त होगा, वही सब प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर दे सकता है।

सबसे पहिले वेदको काव्य समझना चाहिए। काव्यमें (१) स्वर साधन, नादका लय, (२) विचारोंका स्फुरण, (३) शब्द समूहमें गुह्य अर्थ रखनेकी कुशलता, (४) सुविचारोंकी उत्तम योजना, (५) आत्मिक सत्यका अनुभव, (६) सच्चाईको दिव्यदृष्टीसे देखना, (७) परम उच्च प्रतिभाका स्फुरण, (८) विशाल और अटल सृष्टिनियमोंका समीकरण, (९) अनेक अटल नियमोंको स्वल्प शब्दोंमें ग्रथित करनेका चातुर्य, (१०) कल्पनाशक्तिकी चेतनता, धार्मिक समताभाव और आत्मिक शांति; इतने गुण अवश्य रहते हैं। उत्तम काव्य वह होता है कि, जिसका विचार करते करते उसमें सुविचार सागर की गहराई बड़ी गहन प्रतीत होने लगती है और प्रतिसमय नवीन सुविचार अंतःकरणमें प्रेरित होते हैं। काव्यका संबंध बाह्य कानोंकी अपेक्षा आंतरिक हृदय और आत्माके साथ अधिक रहता है।

वेद ईश्वरका काव्य होनेसे इसमें विशेष प्रकारकी दिव्यता है, और खोज करते करते उसकी गहराई अधिक गहन होती जाती है। पढ़ते पढ़ते प्रतिसमय नवीन विचारोंकी प्रेरणा होती है; इस लिये इस देवके काव्यके विषयमें बहुत पढ़नेके पश्चात् ही विचार प्रकट करना अच्छा है। तब तक स्वाध्यायके ही साधन एकत्रित करनेका कार्य करना मुझ जैसे साधारण पुरुषोंको उचित है। इस लिये स्वाध्यायके साधन एकत्रिक करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

स्वाध्यायके मंत्रोंके पदोंका अर्थ जानकर समान विचारके अन्य मंत्र साथ साथ सोचने चाहिए। इस लिये इस ग्रंथमें प्रथम मंत्रोंका शब्दार्थ देकर पीछेसे स्पष्टीकरणके समय तुलना के लिये अन्य मंत्र और शब्दोंका विशेष भाव दिया है। ऐसा स्वाध्याय करनेसे वैदिक विचारोंकी एकता मनमें दृढ़

होगी । वेदमंत्रोंकी एकवाक्यता करनेमें इस प्रकारके अभ्यासकी आवश्यकता होती है । इस प्रकार विचार करनेसे पता लगेगा कि, वेदमें परस्पर विरोधी विचार नहीं हैं । अब इस पुस्तकके विषयमें थोड़ासा लिखना चाहिए । इस पुस्तकमें (१) प्रथम सब मंत्रोंका शब्दार्थ और भावार्थ दिया है । (२) दूसरे विभागमें मंत्रोंपर विशेष विचार प्रकट करनेके समय समान अन्य मंत्रों और ब्राह्मण वाक्योंका विचार किया है । (३) पश्चात् इस पुस्तकमें आये हुए मंत्रोंके उत्तम कण्ठ करने योग्य सुभाषित दिये हैं । (४) पश्चात् इस पुस्तकमें आये हुए मंत्रों और ब्राह्मणवाक्योंकी सूची दी है । (५) पश्चात् इस अध्याय ३६ के मंत्र अन्य वेदों और ब्राह्मण आदि ग्रंथोंमें जहां जहां आते हैं, उन स्थानोंके पते दिये हैं । इस प्रकार स्वाध्याय करनेके सब साधन यहां एकत्रित किये हैं, और इसी-प्रकार अन्य अध्यायोंके स्वाध्यायकी योजना करनी है । इसमें किसीको न्यूनाधिक करनेकी सूचना करनी हो तो कर सकते हैं ।

इस अध्यायमें शांति स्थापित करनेके सत्य उपायोंका वर्णन है । कई लोग शांति स्थापन करनेकेलिये युद्ध करते हैं, कई आपस में समझौता करनेकेलिये सिद्ध होते हैं, इस प्रकार शांतिके अनंत उपाय अनेक लोग सन्मुख करते हैं । ऐसे समय यदि इस अध्यायके उपदेशोंका विचार किया जाय तो बड़ाही अच्छा होगा, इसमें कोई संदेह नहीं ।

अध्यायका आशय ।

इस अध्यायके पहिले मंत्रमें “वाणीको सुभाषणमें, मनको सत्कर्ममें, प्राणको सदुपासनामें और श्रोत्रको आत्मज्ञानके श्रवणमें लगाकर वाणीका तेज, संघका बल, जीवनकी शक्ति और आत्माका सहारा (अधिकरण) प्राप्त करो” ऐसा उपदेश है । वाणी और मनमें बुराई रहनेसे अशांति होती है, इसलिये इनकी शुद्धिका उपदेश प्रारंभमेंही किया है । दुर्व्यसनोंमें जीवन शक्तिका

दुरुपयोग न हो, इस लिये प्राणोंको उपासनामें लगानेका उपदेश है। चुगली सुननेसे कान विगड़ते हैं, इसलिये कानोंको आत्म-ज्ञान सुननेमें लगाना चाहिए इस प्रकार सब इंद्रियोंको शुद्ध करके, उनका तेज बढ़ाकर, व्यक्तिभावको बढ़ानेकी अपेक्षा संघभावको बढ़ाना, आदि पहिले मंत्रका उपदेश शांतिस्थापन करनेवालोंको मनन करने योग्य है।

“अपनी इंद्रियोंकी न्यूनता दूर करनेका उपदेश” द्वितीय मंत्रमें है। बाह्य और आंतरिक इंद्रियोंकी न्यूनता, दोष और कमजोरियोंके कारण ही अशांति होती है। इसलिये कमजोरियोंको हटानेका उपदेश विशेष विचार करने योग्य है। तीसरे मंत्रमें भगवान् की उपासना कही है। उपासनाके बिना सच्ची शांतिकी स्थापना और अशांतिके कारणोंका नाश होना असंभव है। यह उपासना गायत्रीमंत्र-गुरुमंत्र-के द्वारा कही है। इस प्रकार यहां आया हुआ गायत्रीमंत्र प्रसंगानुरूप योग्य है। जो वेदमें पुनरुक्ति दोषकी कल्पना करते हैं, उनको ऐसे प्रसंगोंका विचार करना चाहिए। मेरे ख्यालमें यहां आया हुआ यह मंत्र अत्यंत योग्य है। इसीप्रकार अन्य स्थानों में भी होगा। (यजु. अ. ३२ की प्रस्तावनामें ‘वैदिक पुनरुक्तिका महत्त्व’ देखो)

मंत्र ४ से ७ तक उपासनाके लिये मंत्र दिये हैं। उनमें कई ईश्वरीय गुणों का जो विश्वमें दिखाई देते हैं, वर्णन बड़ी उत्तम-ताके साथ किया है। इन मंत्रोंद्वारा सामगानके साथ उपासना होती है। भक्तिका गानके साथ कितना संबंध है, इसका यहां विचार हो सकता है।

ईश्वरके एकत्वका निश्चय अष्टम मंत्रमें किया है। जिससे अनेक उपास्योंके कारण उत्पन्न होनेवाले अशांतिके प्रकार सुग-मतासे दूर हो सकते हैं। एक ईश्वरही हम सबोंका नियंता है, और वह ही हम सबोंका उपास्य है, इस विषयका निश्चित ज्ञान सबके अंतःकरणों में स्थिर होना चाहिए।

मंत्र ९ से ११ तक परमेश्वर से शांतिकी प्रार्थना है, और साथ साथ परमेश्वरके भिन्न भिन्न नाम कह कर, उन गुणोंकी ओर ध्यान देनेका उपदेश किया है कि, जिनसे मनुष्योंको अभ्युदय के साथ शांति प्राप्त हो सकती है। मंत्र १२ और १४ से १६ तक जलसे व्याधि आदि आपत्तियोंका शमन कहा है। शांतिकेलिये आरोग्यताकी अत्यंत आवश्यकता है। इस विषयमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। मंत्र १२ में अच्छे प्रदेश में रहनेका उपदेश है। भूमि रोगरहित और सुखदायक होनी चाहिए। भूमीके कारण जगतमें अनेक प्रकारकी अशांति होती है। इसलिये भूमिके संबंधमें व्यवहार ठीक रखना चाहिए। मंत्र १७ में आकाश से लेकर भूमितक सब पदार्थोंसे शांति प्राप्त करनेकी सूचना है। किसी पदार्थ से अशांति न हो, इतनाही नहीं; परंतु 'शांतिभी सच्ची शांति देनेवाली हो', ऐसा जो अंतमें कहा है, बहुत मनन करने योग्य है। कई समय शांतिका परिणाम शक्ति क्षीण होनेमें होता है, इसलिये शांति अभ्युदय करनेवाली सच्ची शांति होनी चाहिए।

मंत्र १८ में "सबको मित्रकी दृष्टिसे देखने" का उपदेश है। यह मित्र दृष्टि न होनेसेहि सब अशांतियां फैलीं हैं। जबतक इस मित्र-दृष्टिका स्वभाव सब के अंतःकरणों में स्थापित न होगा तबतक सच्ची शांति स्थापित हो नहीं सकती। मंत्र १९ में "परमेश्वर की जागृति सदासर्वदा मनमें रखने" का उपदेश है। परमेश्वरकी जागृति मनमें रहनेसे मनमें अशुद्ध विचार नहीं उत्पन्न होते। अंतःकरणकी शुद्धिके लिये ईश्वरकी जागृतिकी अत्यंत आवश्यकता है। मंत्र २०।२१ में परमात्माको नमन कहा है। परमेश्वरके सन्मुख नम्र होनेवालों में शांति रह सकती है।

मंत्र २२ में "अभय प्राप्तिकी इच्छा" है। निडर हो कर धर्मके कार्य करने चाहिए। धर्मके मार्गमें कार्य करनेके समय भय दूर करना चाहिए। शांतिस्थापनाके लिये निर्भयताकी अत्यंत आव-

इयकता है। मंत्र २३ में समाजका घात करनेवालेका तथा समाजमें द्वेष फैलानेवालेका नाश करनेकी सूचना है। द्वेषको बढ़ानेवाला एक आदमी सब समाजका नाश कर सकता है, इसलिये उसको दूर करके सब समाजको बचाना अच्छा है। उस द्वेषीके दूर होनेसे समाजमें शांति रहेगी। यह उपदेश समाजशुद्धिकेलिये है। मंत्र २४ में अपनी शक्तियोंको दीर्घ आयुष्यतक बलवान् रखनेका उपदेश है। ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि मनुष्योंकी शक्तियां बढ़ें और साथ साथ आरोग्यता, आयु और बल भी बढ़ें।

इस प्रकार २४ मंत्रोंके द्वारा शांतिके उपायोंका वर्णन किया है। इन २४ मंत्रोंका अतिसंक्षेपसे सारांश यह है:—“सत्कर्म, आत्मशुद्धि, ईशोपासना, स्वसंरक्षण, आत्मिकबल, एक ईश्वरपर विश्वास, न्याय, ज्ञान, कर्म और मित्रत्व, आरोग्य, उत्तम स्थानमें रहना, तृप्ति और शांति, मित्रवत् सबको देखना, ईश्वरको सर्वदा सन्मुख मानना, ईश्वरको नमन करना, निर्भय होकर धर्माचरण करना, समाजसे दुष्टोंको दूर करना, दिव्य ज्ञानकी ओर दृष्टि रखनी, अपनी आयु बढ़ानी और मरनेतक उत्तम कर्म करने इत्यादि बातोंकी ओर ध्यान देकर, इनका अनुष्ठान करनेसे सच्ची शांति स्थापन हो सकती है।”

इस प्रकार इस अध्यायका स्वरूप और महत्त्व है। आशा है कि स्वाध्यायशील विद्वान् इससे लाभ उठाकर अपना और दूसरोंका भला करेंगे।

स्वाध्यायमंडल

औध

जि. सातारा

१९१८/१९

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.

यजुर्वेद अ० ३६ की द्वितीय आवृत्तिकी प्रस्तावना ।



यह बड़ी संतोषकी बात है, कि छः महिनोंके अंदर ही यजुर्वेद अ० ३६ 'शांतिकरण' अर्थात् 'सच्ची शांतिका सच्चा उपाय' नामक पुस्तकका द्वितीय संस्करण करनेकी अत्यंत आवश्यकता प्रतीत हुई। वास्तवमें देखा जाय, तो इस भारतवर्षमें वैदिक धर्मके अनुयायी चौबीस करोड़ से अधिक हैं, इतनी बड़ी जनतामें लाखों पुस्तकें छापनेकी आवश्यकता होनी चाहिए। परंतु विभिन्न मतवादके ग्रंथोंका अभिमान अधिक बलवत्तर होनेके कारण, वास्तविक वेदरूपी सच्चे धर्मग्रंथके विषयमें केवल नाममात्रही अभिमान इस समय रहा है। इसलिये वेदके पुस्तकोंकी विक्री उतनी नहीं होती, जितनी कि मतवादके ग्रंथोंकी हो सकती है।

स्वाध्याय-मंडलका उद्देश है कि, प्रत्येक वैदिक-धर्मीके घरमें वेदोंका पठन पाठन प्रतिदिन होता रहे। इस उद्देशकी पूर्णताके लिये स्वा० मंडल सदा प्रयत्न कर रहा है। जब पाठकवृंद इस उद्देशके साथ सहमत होकर सहायता देंगे तभी स्वा० मंडल का उद्देश परिपूर्ण हो सकता है। यदि प्रत्येक पाठक दस मनुष्योंको स्वाध्याय करनेके लिये उत्साह देगा, तो उक्त उद्देश शीघ्रही सफल हो सकता है। प्रत्येक वैदिक धर्मके अभिमानी मनुष्यको चाहिए कि, वह अपने प्रयत्नसे कमसे कम दस मनुष्योंमें वैदिक धर्मकी उच्चताकी जागृती करे।

इस पुस्तक के द्वितीय संस्करणमें आवश्यक परिवर्तन करके, 'सच्ची शांति' के वैदिक उपायोंका विवरण अधिक सुगम करनेका प्रयत्न किया है। कोष्टकोंमें भी थोड़ासा परिवर्तन करके, कोष्टकोंका विषय अधिक सुगम करनेका यत्न किया गया है। आशा है कि

(४) कस्यावनशीलत्वस्य चिन्तनम् ।

(ऋषिः—वामदेवः । देवता—इन्द्रः)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ॥

कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ॥

दृढा चिदाऽऽरुजे वसु ॥ ५ ॥

(वरेण्यं) श्रेष्ठ (भर्गः) तेजका हम सब (धीमहि) ध्यान करते हैं । (यः) जो (नः* धियः) हमारी बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) विशेष प्रेरणा करे अथवा करता है ॥ भावार्थ—तीनों कालों में एकरूप रहनेवाले, ज्ञानस्वरूप, प्रकाशानंदमय, जगदुत्पादक और प्रेरक ईश्वर के श्रेष्ठ तेज का हम सब ध्यान करते हैं, क्यों कि वही ईश्वर हम सबकी बुद्धियोंको विशेष प्रकारसे प्रेरणा करनेवाला है ।

[४] (४) परमेश्वरके आनंदकारक रक्षणस्वभावका चिन्तन । अर्थ—(सदावृधः) सदासे महान् और (चित्रः) आश्चर्यकारक ईश्वर (कया ऊती) कल्याणमय रक्षणके द्वारा, (कया शचिष्ठया) कल्याणमय महाशक्तिद्वारा, और (वृता) आवर्तन अर्थात् वारंवार कर्म करनेद्वारा (नः) हम सबका (सखा) मित्र (आ भुवत्) होता है । भावार्थ—सब कालमें सबसे श्रेष्ठ, सबसे विलक्षण ईश्वर, कल्याणकारक रक्षण के द्वारा और अपनी आल्हाददायक महाशक्ति के तथा वारंवार कर्म करनेके सामर्थ्यके साथ हम सबका मित्र होता है । अर्थात् मित्रके समान हम सबका भला करता है ।

[५] अर्थ—(१) हे ईश्वर ! तू (अन्धसः) अन्नादि भोगोंके (मदानां) आनंदोंसे भी (मंहिष्ठः) अधिक आनंदकारक और

* इस मंत्रमें “नः” (हम सबकी) यह शब्द समुदाय, जाति, समाज अर्थात् अनेक मनुष्योंके सत्संग का बोधक है । सामूहिक उपासना इससे सिद्ध होती है ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् ॥

शतं भवास्तुतिभिः ॥ ६ ॥

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः, सुकक्षो वा । देवता—इन्द्रः)

कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन् ॥

कर्या स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

(सत्यः) तीनों कालोंमें एक समान है, इसलिये (कः) कौन (त्वा) तुझे (मत्सद्) आनंदित कर सकता है? तू (दृढा-दृढानि) बलवान् (वसु) पृथिवी आदि पदार्थोंको भी (आ रुजे) छिन्नभिन्न करता है। भावार्थ—अन्न आदि भोगोंसे जो आनंद होता है, उससे अधिक आनंद तेरी प्राप्तिसे होता है। और तू सदा एक समान रहता है। तुझमें कभी न्यूनता, कभी अधिकता नहीं होती। तुझे आनंद देनेवाला कोई नहीं, परंतु तू ही सबोंको आनंदित करता है। तू इतना बलवान् है कि, पृथिवी आदि सब दृढ पदार्थोंको प्रलयकालमें छिन्नभिन्न करता है।

[५] अर्थ—(२) हे मनुष्य! वह (कः) आनंदस्वरूप (सत्यः) तीनों कालोंमें एक समान रहनेवाला (मदानां मंहिष्ठः) आनंदोंके कारण महान श्रेष्ठ ईश्वर (त्वा) तुझे (अन्धसः) अन्नादिक भोगोंसे (मत्सत्) आनंदित करता है। और (दृढा वसु) बलवान् धनोंको (आ रुजे) दुःख विनाशके लिये देता है। भावार्थ—वह आनंदमय, सत्य और महान ईश्वर अन्न आदि भोग और बलयुक्त धन, आपत्तियोंका विनाश करनेके लिये, मनुष्योंको देकर उनको आनंदित करता है।

[६] अर्थ—हे ईश्वर! (नः) हम सबोंका (सखीनां) मित्रोंका और (जरितृणां) उपासकोंका (शतं ऊतिभिः) सैंकड़ों रक्षणोंके द्वारा (अभि सु अविता) सब प्रकारसे उत्तम रक्षक (भवसि) तू होता है। भावार्थ—हम सबोंका, मित्रों और उपासकोंका तू सैंकड़ों प्रकारोंसे अत्यंत उत्तम रक्षण करता है।

[७] अर्थ—हे (वृषन्) आनंदकी वृष्टि करनेवाले ईश्वर!

(५) विश्वस्य एकोऽधिपतिः ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—इन्द्रः)
इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ शं नो अस्तु द्विपदे शं
चतुष्पदे ॥ ८ ॥

(६) कल्याणाय प्रार्थना ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः, गोतमो राह्वगणपुत्रो वा । देवताः—
मित्रवरुण-अर्यमा-इन्द्र-वृहस्पति-विष्णवः)
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयुर्मा ।
शं न इन्द्रो वृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

तूँ (कया) आनन्दकारक (ऊत्या) रक्षणके साथ (नः) हम सबको (अभि प्र मन्दसे) सब ओरसे आनन्दित करता है । और (कया) उसी निज आनन्दसे (स्तोतृभ्यः) तेरे गुणकीर्तन करनेवालोंकी (आ भर) पुष्टि करता है । भावार्थ—आनंदकी वृष्टि करनेवाला ईश्वर, हम सबोंका सब प्रकारसे रक्षण करता हुआ सबको आनंदयुक्त करता है । और उसीके गुणोंका वर्णन करनेवालोंका भरण पोषण करता है ।

[८] (५) जगत्का एक अधिपति । अर्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (विश्वस्य) सबका (राजति) राजा है । वह (नः) हम सबोंके (द्विपदे) दो पांववालोंके लिये (शं) कल्याणकर्ता तथा (चतुष्पदे) चार पांववालोंके लिये भी (शं) कल्याणकर्ता (अस्तु) होवे । भावार्थ—परम ऐश्वर्यसंपन्न परमेश्वर सब जगत्का राजा है । वही मनुष्यों और पशुपक्षियोंके लिये कल्याण करनेवाला है ।

[९] (६) कल्याणप्राप्तिके लिये प्रार्थना । अर्थ—(मित्रः) सबोंका मित्र, ईश्वर (नः शं) हम सबोंको कल्याणकारी होवे । (वरुणः) सबसे श्रेष्ठ, ईश्वर (शं) कल्याणकारी होवे । (अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर (नः शं) हम सबोंको कल्याणकारी

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवताः—वात-सूर्य-पर्जन्याः)

शं नो वातः पवतां५ शं नस्तपतु सूर्यः ॥

शं नः कनिक्कदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ १० ॥

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवताः—अहः, रात्रिः, इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणौ, इन्द्रापूषणौ, इन्द्रासोमौ ।) (ऋग्वेदे शं न इन्द्राग्नी इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः)

अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रति धीयताम् ॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ॥ शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा-सोमा सुविताय शं योः ॥ ११ ॥

(भवतु) होवे । (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शं) हम सबोंको कल्याणकारी होवे । (बृहस्पतिः) वाणीका स्वामी, (विष्णुः) व्यापक और (उरु-क्रमः) जिसका महान क्रम है वह ईश्वर (नः शं) हम सबोंको कल्याणकारी होवे । भावार्थ—सबके साथ प्रेम करनेवाला, सबसे श्रेष्ठ, न्यायकारी परम ऐश्वर्यवान्, विश्वका अधिपति, सर्वव्यापक, और विशेष क्रमसे कार्य करनेवाला ईश्वर हम सबोंका कल्याण करे ।

[१०] अर्थ—(वातः*) वायु (नः) हम सबोंके लिये (शं) कल्याणमय होकर (पवतां) वहता रहे । (सूर्यः) सूर्य (नः) हम सबके लिये (शं तपतु) कल्याणकारक होकर तपता रहे । (कनिक्कदद्) गर्जना करनेवाला (पर्जन्यः देवः) पर्जन्य देव (नः) हम सबोंके लिये (शं) कल्याणकारक होकर (अभिवर्षतु) वृष्टि करे । भावार्थ—वायु, सूर्यका प्रकाश, और मेघकी वृष्टि इन सबसे हम सबका कल्याण होता रहे ।

[११] अर्थ—(नः) हम सबोंके लिये (अहानि) दिन (शं)

* वात आदि शब्दोंसे व्यक्त होनेवाले विशेष भावोंका वर्णन अंतके स्पष्टीकरणमें देखिए ।

(७) उदक-शांतिः ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । त्रिशरास्त्वाष्ट्रः । सिंधुद्वीपो
वाऽम्बरीषः । देवता—आपः)

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ॥

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥

(८) अनृक्षरा भूमिः ।

(ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः । देवता—पृथिवी)

स्योना पृथिवि नो भवाऽनृक्षरा निवेशनी ॥

यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

कल्याणकारक (भवन्तु) हों । (रात्रीः) रात्रीका समय हम सबोंकेलिये (शं) कल्याणको (प्रतिधीयतां) धारण करे (अवोभिः) सब प्रकारके रक्षणोंके साथ (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी (नः शं) हम सबोंके लिये कल्याणकारक (भक्तां) हों । (रात-हव्यौ) अन्न देनेवाले (इन्द्रा-वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ (नः शं) हम सबका कल्याण करें । (इन्द्रा-पूषणौ) ऐश्वर्यवान् और पोषण कर्ता (वाजसातौ) अन्नके दानके समय (नः शं) हम सबका कल्याणकारी हों । (इन्द्रा-सोमौ) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् (सुविताय) सुभीतेके लिये और (शं-योः) रोगनिवारण और भयोंको हटानेके लिये (शं) कल्याणकारी हों । भावार्थ—हरएक समय ये सब शक्तियां हमको लाभदायक हों ।

[१२] (७) जलसे तृप्ति । अर्थ—(देवीः) दिव्य (आपः) उदक (अभिष्टये) हमारा अभीष्ट सिद्ध करनेवाला, (नः शं) हम सबका कल्याण और (पीतये) तृषा शांत करनेवाला (भवन्तु) होवे । वह (नः शं-योः) हमारा रोग-निवारण और अनिष्ट दूर करनेके लिये (अभि स्रवन्तु) बहता रहे । भावार्थ—दिव्य उदकसे हमारी तृषा शांत हो । हमारे रोग दूर हों और अनिष्टका नाश हो । तथा हमारा अभीष्ट अन्नादिक भोग हमें प्राप्त हो ।

[१३] (८) निष्कंटक भूमि । अर्थ—हे (पृथिवि) भूमि !

(९) अद्भ्यो बलसुखप्राप्तिः ।

(ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । सिंधुद्वीपो वाऽम्बरीषः ।

देवता—आपः)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ॥

महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ॥

उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

(नः) हम सबके लिये (स्योना) सुखदायक (अनृक्षरा) कण्टकरहित और (निवेशनी) रहनेके लिये उत्तम स्थान देनेवाली (भव) हो । (नः) हम सबके लिये (स-प्रथाः) अत्यंत विस्तीर्ण होकर (शर्म) सुख (यच्छ) दे । भावार्थ—रहनेका स्थान कंटकरहित, आराम देनेवाला, विस्तीर्ण तथा सुखकारक होना चाहिए ।

[१४] (९) जलसे बल और सुखकी प्राप्ति । अर्थ—(हि) निश्चयसे (आपः) उदक (मयो-भुवः) सुख उत्पन्न करनेवाला (स्थ) है । इसलिये (ताः) वह उदक (नः) हम सबके (ऊर्जे) बल अन्न आदिकी वृद्धिका (दधातन) धारण करे । और (महे) महान (रणाय) शब्दके लिये और (चक्षसे) दिव्य दृष्टिके लिये वह उदक कारण बने । भावार्थ—जलसे सबसे सब सुख प्राप्त हो सकते हैं । इसलिये उत्तसे हम सबको अन्न प्राप्त होकर, सबका बल बढ़े; और वह जल महान शब्द-ज्ञानकी प्राप्ति कराके दिव्यदृष्टि प्राप्त होनेमें सहायता देनेवाला बने ।

[१५] अर्थ—(इह) इस संसारमें (यः) जो (वः) आपका अर्थात् जलका (शिव-तमः) अत्यंत कल्याणकारक (रसः) रस है (नः) हम सबको (तस्य) उस रसका (भाजयत) सेवन करायिए । (इव) जिस प्रकार (उशतीः) इच्छा करनेवाली (मातरः) माताएं अपने पुत्रोंको दुग्ध रस पिलातीं

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ॥
आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

(१०) सत्या शांतिः ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—ईश्वरः, ब्रह्म)
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः ॥ वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे
देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

हैं । भावार्थ—जलके अन्दर जो आरोग्यवर्धक रस है, उसका सेवन सबको करना चाहिए । जिस प्रकार अपने प्रियपुत्रको दूध पिलानेकी इच्छा करनेवाली माता स्वयं अपने पुत्रके पास पहुँच कर, उसको दूध पिलाती है, ठीक उसीप्रकार उत्तम आरोग्य-वर्धक जल हमारे पास आ जाय अर्थात् हमें नित्य प्राप्त हो ।

[१६] अर्थ—(यस्य) जिस रसकी (क्षयाय) प्राप्तिके लिये (जिन्वथ) आपकी गति है, (तस्मै) उस रसके लिये (वः) आपके पास (अरं-अलं) पूर्णतासे हम सब (गमाम) प्राप्त होते हैं । हे (आपः) उदक ! (च) और (नः) हम सबको (जनयथा) उन्नतिको प्राप्त कराओ । भावार्थ—जिस आरोग्यकारक रसके लिये जलकी प्रसिद्धि है, उस रसकी पूर्ण प्राप्ति हम सबको हो, और उससे हमारी उन्नति होनेमें सहायता हो ।

[१७] (१०) सत्यशांतिकी प्राप्ति । अर्थ—(द्यौः शांतिः) बुलोक शांतिप्रदान करे, (अंतरिक्षं शान्तिः) अंतरिक्षलोक शांति-प्रदान करे, (पृथिवी शांतिः) भूमि शांतिप्रदान करे, (आपः शांतिः) जलसे शांति प्राप्त हो, (ओषधयः शांतिः) औषधियां शांति देनेवालीं हों, (वनस्पतयः शांतिः) वनस्पतियां शांति देनेवालीं हों, (विश्वेदेवाः शांतिः) सब विद्वान शांति उत्पन्न

(११) मित्रस्य चक्षुषाऽवेक्षणम् ।

दृते दृष्टं मा, मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताम् ॥ मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षे ॥ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

(१२) ईश-संदर्शनेन जीवनम् ।

दृते दृष्टं मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते
संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

करें, (ब्रह्म शांतिः) ज्ञान शांति देनेवाला हो, (सर्व शांतिः)
सब जगत् शांति स्थापित करे, (शांतिः एव शांतिः) शान्ति भी
सच्ची शांति देनेवाली हो, (सा शान्तिः) इस प्रकारकी सच्ची
शांति (मा एधि) मुझे प्राप्त हो । भावार्थ—सब पदार्थ सच्ची
शांति स्थापित करनेके लिये सहायक हों ।

[१८] (११) मित्रकी दृष्टिसे सबको देखना । अर्थ—हे (दृते)
समर्थ ! (१) (मा दृष्टं) मुझे बलवान करो । (२) (सर्वाणि
भूतानि) सब प्राणिमात्र (मा) मुझे (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी
दृष्टिसे (समीक्षन्तां) देखें । (३) (अहं) मैं (सर्वाणि भूतानि)
सब प्राणियोंको (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी दृष्टिसे (समीक्षे)
देखता हूं । (४) हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रकी दृष्टिसे
(समीक्षामहे) देखें । भावार्थ—हे समर्थ ईश्वर ! (१) मुझे
बलवान बनाओ । (२) सब प्राणिमात्र मुझे मित्रकी प्रेमदृष्टिसे
देखें । (३) मैं सबको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखता हूं । (४) हम
सब परस्पर मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखें ।

[१९] (१२) अर्थ—हे (दृते) शक्तिमान् ! (मा दृष्टं) मुझे
शक्तिमान करो । (ते संदृशि) तेरे उत्तम दर्शनमें (ज्योक्)
बहुत समयतक (जीव्यासं) मैं जीता रहूं । (ते संदृशि ज्योक्
जीव्यासम्) तेरे साक्षात्कारमें दीर्घआयुतक जीता रहूं ।

(१३) परमात्मने नमः ।

(ऋषिः—लोपामुद्रा । देवता—अग्निः)

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ॥ अन्याः स्ते
अस्त्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ २० ॥

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—ईश्वरः)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्तवे ॥

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमान ईश्वर ! मुझे शक्तिमान करो । तेरी स्मृति जाग्रत रखता हुआ मैं बहुत दीर्घ आयुष्य व्यतीत करूँ ।

[२०] (१३) परमेश्वरको नमन । अर्थ—(हरसे) दुष्टताका हरण करनेवाले (शोचिषे) पवित्रता बढ़ानेवाले और (अर्चिषे) तेज फैलानेवाले (नमः ते, नमः ते) तेरे लिये हमारा नमस्कार (अस्तु) हो । (ते हेतयः) तेरे शस्त्र (अस्मत् अन्यान्) हमको छोड़कर दूसरोंको (तपन्तु) ताप देते रहें । (पावकः) पवित्रता करनेवाला ईश्वर (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (शिवः भव) कल्याणकारी होवे । भावार्थ—दुष्टता दूर करनेवाले पवित्रता करनेवाले और तेजस्विता बढ़ानेवाले ईश्वरको हमारा नमस्कार है ऐसा कभी प्रसंग न आवे कि ईश्वरका दण्ड हमारे ऊपर चले, अर्थात् हमारा आचरणही सदा ऐसा होवे कि दण्ड भोगनेका समय कभी न आवे । पवित्र ईश्वरकी दया हमारे ऊपर सदा बरसती रहे ।

[२१] अर्थ—(विद्युते ते) विशेष तेजःस्वरूप तेरे लिये (नमः अस्तु) नमस्कार हो । (स्तनयित्तवे ते) महान् शब्द करनेवाले तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो । हे (भगवन्) ऐश्वर्यसंपन्न ! (ते नमः अस्तु) तेरे लिये नमस्कार हो । (यतः) क्यों कि तू (स्वः) अपने निज आनन्दमें (सं-ईहसे) सम्यक् चेष्टा करता है । भावार्थ—तेजोमय, शब्दमय, और ऐश्वर्यमय ईश्वरके

(१४) अभय-प्रदानम् ।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ॥

शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥

(१५) सर्व-द्रोहकर्तुर्विनाशः ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणः । देवता—सोमः)

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु, दुर्मित्रियास्तस्मै

सन्तु ॥ योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

लिये हमारा नमस्कार है । जो ईश्वर अपने निज आनन्दसे ही सदा आनन्दित रहता है और उस आनन्दका दान करता है ।

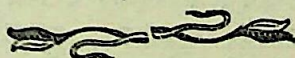
[२२] (१४) अभयप्रदान । अर्थ—(यतः यतः) जिस जिस स्थानसे तू (समीहसे) कर्म करता है (ततः) उस उस स्थानसे (नः) हमारे लिये (अभयं) अभयदान (कुरु) करो । (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाके लिये (शं अभयं) कल्याणकारक अभय (कुरु) करो और (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओंके लिये भी अभयदान करो । भावार्थ—हे ईश्वर ! जिस जिस स्थानसे तुम्हारा कर्म चलता है, उस उस स्थानसे हमारे लिये, हमारी प्रजाओं और पशुओंके लिये, कल्याणमय अभयदान करो ।

[२३] (१५) जनताका द्वेष करनेवालेका नाश । अर्थ—(आपः ओषधयः) जल और औषधियां (नः) हम सबके लिये (सुमित्रियाः) हितकारक (सन्तु) होवें । तथा (तस्मै) उस एकके लिये (दुर्मित्रियाः) दुःखकारक (सन्तु) होवें कि, (यः) जो अकेला दुष्ट (अस्मान् द्वेष्टि) हम सबका द्वेष करता है (यं च) और जिस एकका (वयं) हम सब (द्विष्मः) द्वेष करते हैं, भावार्थ—हम सबको जल, औषधि आदि पदार्थ हितकारक होवें । परंतु जो थोड़े आदमी सबका द्वेष करते हैं, और जिन थोड़े आदमियोंका अन्य सब द्वेष करते हैं, ऐसे अल्प दुष्ट मनुष्योंको जल और औषधि आदि पदार्थ अहितकारक होवें ।

(१६) दिव्यज्ञानोदयो दीर्घायुःप्राप्तिश्च ।

(ऋषिः—दध्यङ् आथर्वणो वसिष्ठो वा । देवता—सूर्यः)
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुचरत् ॥ पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रव्र-
वाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥ २४ ॥

[२४] (१६) ज्ञानदृष्टिका उदय और दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति ।
अर्थ—(तत्) वह (देवहितं) ज्ञानियोंका हित करनेवाला
(शुक्रं) शुद्ध, पवित्र (चक्षुः) ज्ञाननेत्र (पुरस्तात्) पहिलेसेही
(उत् चरत्) उदित हुआ है । उसकी सहायतासे (शरदः शतं
पश्येम) सौ वर्षपर्यंत देखें, (शरदः शतं जीवेम) सौ वर्ष जीते
रहें, (शरदः शतं शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें, (शरदः शतं
प्रव्रवाम) सौ वर्ष प्रवचन करें, (शरदः शतं अदीनाः स्याम)
सौ वर्ष दीन न होते हुए रहें, (शरदः शतात् भूयः च) और
सौ वर्षोंसे अधिक आनन्दसे रहें । भावार्थ—जिससे सबका
हित होता है, उस ज्ञानकी प्राप्ति पहिले करनी चाहिये; उसी
ज्ञानसे हमारी आयु बढ़ेगी, हमारी इन्द्रियों की शक्तियां सब
की सब मृत्युके समयतक अच्छी अवस्थामें रहेंगी । और सौ
वर्षसेभी अधिक आयु होगी ।



यजुर्वेद अ० ३६ का स्वाध्याय-स्पष्टीकरण

मंत्र १

(१) वाणी, मन, प्राण और ज्ञानकी शक्तियाँ ।

(१) ऋचं वाचं प्रपद्ये ॥

(अहं वाचं वाक्शक्तिं अवलम्ब्य ऋचं सूक्तमयं ऋग्वेदं प्रपद्ये शरणं गच्छामि ।)

मैं (वाचं) अपनी वाणीकी शक्तिका अवलम्बन करके (ऋचं) सूक्तमय ऋग्वेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूँ ।

“प्र-पद्ये” धातुके अर्थ “शरण लेना, प्राप्त होना, पास जाकर तल्लीन होना, आश्रय लेना, आगे बढ़ना, उन्नति करना, कामयाब होना” इत्यादि हैं । ये अर्थ ध्यानमें धरकर “ऋचं प्रपद्ये” का अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है:—“मैं ऋचाकी शरण लेता हूँ, ऋचाको प्राप्त करता हूँ, ऋचाको प्राप्त करके उसमें लीन होता हूँ, ऋचाका आश्रय लेकर, आगे बढ़कर, उन्नति प्राप्त करनेमें कामयाब होता हूँ ।”

ऋचाको प्राप्त करना वाणीका अवलम्बन करनेके पश्चात् ही होता है, क्योंकि ऋचा अथवा ऋग्वेद शब्द-राशि होनेके कारण वाणीकी शक्तिद्वारा ही उसके पास मनुष्य पहुँच सकता है । ऋग्वेदका स्वरूप सूक्त-रूप है । “सूक्त” उसको कहते हैं कि, जो (सु-उक्ति) उत्तम भाषण, सु-भाषण, सुभाषित हो । उत्तम भाषणसे वाणीकी शुद्धि होती है । ऋग्वेदमें सूक्त अर्थात् उत्तम भाषण, और उत्तम विचारयुक्त वाक्य हैं; उनकी शरण लेनेसे वाणीकी और आत्माकी शुद्धि होती है । इसलिये कहा है:—

भद्रं वद गृहेषु च ॥

भद्रं वद पुत्रैः ॥ ऋग्वेद खिल. २।४३।२॥

“अपने अपने घरोंमें कल्याणकारक भाषण किया करो। लड़कोंके साथ उत्तम भाषण करो” अर्थात् कभी बुरा शब्द, गालियां-अथवा अपशब्द-मुंहसे न निकले। तथा—

वाचं वदत भद्रया ॥ अथर्व. ३।३०।३ ॥

“कल्याण करनेवाला भाषणही आपसमें करो” बुरा भाषण करनेसे अनर्थ होते हैं। सब झगड़ोंके बीचके तय के अन्दर देखा जाय, तो वहां अपशब्द ही दिखाई देंगे। इस लिये कहा है कि “अपनी वाचा-शक्तिको लेकर ऋग्वेद के सूक्तोंकी शरण लेनी चाहिए।” ऋग्वेदके सूक्त ऐसे हैं कि, वे वाणी को शुद्ध करके आत्माका उद्धार कर सकते हैं। देखिए:—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ॥

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति

य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ. १।१६।३९॥

(यस्मिन्) जिसमें (विश्वे देवाः) सब देवताएं, सब दिव्य गुण, (अधि निषेदुः) रहते हैं, उसी (ऋचः) ऋचाके (परमे अक्षरे) अत्यंत अविनाशी अक्षरोंमें (व्योमन्=वि-ओम्-अन्) प्रकृति—परमेश्वर—जीवात्मा रहते हैं। (यः) जो मनुष्य (तत्) उस बातको (न वेद) नहीं जानता, वह न जाननेवाला पुरुष (ऋचा) वेदमंत्रोंसे (किं करिष्यति) क्या करेगा? अर्थात् उसको कोई लाभ नहीं होगा; परंतु (ये) जो मनुष्य (इत् तत्) निश्चयसे उस बातको (विदुः) समझेंगे (ते इमे) वे पुरुष ही (सं आसते) एक होकर उत्तमतासे स्थिर बैठ सकते हैं ॥

वेदोंके मंत्रोंमें देवताओंके मिससे प्रकृति-परमेश्वर-जीवात्माका ज्ञान भर रखा है । इस बातको जो जानता है, वही वेदमंत्रोंसे लाभ प्राप्त कर सकता है और वही निडर होकर स्थिरताको प्राप्त हो सकता है । परंतु जो इस बातको नहीं जानते, उनको वेद पढ़नेसे कोई लाभ नहीं होता । ऋचाओंका उपयोग अथर्ववेदमें कहा है:—

ऋग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्

द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥

अथर्व. १०।५।३०॥

“(यः) जो अकेला (अस्मान्) हम सबका (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (वयं) हम सब (यं) जिस अकेलेका (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तं) उस बहुजनविरोधी मनुष्यके साथ हम सब (ऋग्भ्यः) ऋचाओं अर्थात् सूक्तोंके अनुकूल (निः भजामः) वर्ताव करते हैं ।”

एक मनुष्यको अथवा अल्प संख्यामें रहनेवाले मनुष्योंको उचित नहीं कि, वे सब अन्य बहुजनसमाजका व्यर्थ द्वेष करें, या उनको नुकसान पहुँचाएं । जिस एकके विरुद्ध सब बोलते हैं, और जो एक सबकी हानि करनेके लिये कटिबद्ध होता है वह समाज-घाती होता है । उसको सूक्तों अर्थात् उत्तम उपदेशोंद्वारा समझाना चाहिये, और उसका मन उच्च बनाना चाहिये । यही वेदके सूक्तोंका काम है । यही वैदिक उपदेशका महत्व है । और देखीए:—

ऋग्वेदस्य पृथिवी-स्थानम् ॥

ऋचो विद्वान् पृथिवीं वेद ॥ गोपथ ॥ १।५।२५॥

“ऋग्वेदका पृथिवी स्थान है, इसलिये जो ऋग्वेदको यथावत् जानता है वह संपूर्ण पृथिवीको अर्थात् पार्थिव पदार्थोंको जानता है” ऐसा गोपथ ब्राह्मणमें कहा है । तथा:—

ऋचां प्राची महती दिगुच्यते ॥

तै० ब्रा० ३।१२।९।१॥

“ऋचाओंकी बड़ी पूर्व दिशा कही जाती है” अर्थात् जिसप्रकार पूर्व दिशासे संपूर्ण विश्वको प्रकाश देनेवाला सूर्य उदय होता है, उसी प्रकार ऋचाओंसे संपूर्ण विश्वके ज्ञानका उदय होता है । ज्ञानरूपी सूर्यका उदय करानेवाली पूर्वदिशा ऋग्वेदही है ।

इस प्रकार ऋग्वेदका महत्त्व वैदिक वाङ्मयमें वर्णन किया है । वाणीकी पवित्रताके विषयमें ऋग्वेदमें लिखा है:—

सहस्रधारे वितते पवित्र आ

वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ॥

रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः

स्पशः खञ्जः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ऋ. ९।७३।७॥

(वितते) विस्तृत (सहस्र-धारे) हजारों धाराओं अर्थात् जल-प्रवाहोंसे युक्त (पवित्रे) शुद्ध करनेवाले स्रोतमें (मनीषिणः कवयः) बुद्धिमान ज्ञानी अपनी (वाचं) वाणीको (आ पुनन्ति) पवित्र करते हैं । (एषां) इन विद्वानोंके शब्द (*रुद्रासः) भय उत्पन्न करनेवाले, परंतु (इषिरासः) बड़े प्रभावशाली, (अ-द्रुहः) किसीका द्रोह अथवा घात न करनेवाले, (स्पशः) सावधानतासे

* (रुद्र) Dreadful भयानक, Great महान, Driving away evil दुष्टताको दूर करनेवाला, Praise-worthy स्तुल्य; (रु+र) शब्द-शास्त्रका उपदेश करनेवाला । (इषिर) Refreshing उत्साह देनेवाला, Powerful शक्तिमान, Active प्रयत्नशील । (अ-द्रुह) झगडा न करनेवाला, (स्पशः) Guarding, watchful सावधानमय, दक्षतायुक्त । (खञ्जः) Clear शुद्ध, मलरहित, Shining प्रकाशयुक्त, चमकीला । (नृ-चक्षसः) Guiding men नेता लोग, मनुष्योंको शिक्षा-ज्ञान आदि देनेवाला ॥

शांति. ३

युक्त, (स्वञः=सु-अञः) उत्तम शुद्धतायुक्त, (सु-दृशः) उत्तम दिव्य दृष्टिसे युक्त, और (नृ-चक्षसः) मनुष्योंको सञ्ज्ञान करने-वाले होते हैं ।

जिसमें बुद्धिमान कवि अपनी वाणीके मूल धोते हैं, वह पवित्र स्रोत परमात्माका सत्य स्वरूप और सत्य ज्ञान है । उसमें शुद्ध हुई वाणी उक्त गुणोंसे युक्त होती है । इस प्रकार वाणीकी शुद्धि करनेके विषयमें और वाणीको ऋग्वेदमें लीन करनेके विषयमें वेदकी संमति प्रतीत होती है । अब मंत्रका अगला उपदेश देखना है:—

(२) मनो यजुः प्रपद्ये ॥

(अहं मनः स्वकीयां मननशक्तिं अवलम्ब्य यजुः अध्यायमयं सत्कारसंगति-दानमयकर्मप्रेरकं वा यजुर्वेदं प्रपद्ये शरणं उपैमि ।)

मैं (मनः) अपनी मननशक्तिको लेकर (यजुः) यजुर्वेदकी शरण लेता हूँ ।

यजुर्वेद में अध्याय होते हैं । अध्याय, अध्ययन ये शब्द “पठन” अर्थ बताते हैं । अध्ययन न करनेके दिनका नाम ‘अनध्याय’ है । अन्+अध्याय=छुट्टीका दिन ॥ अध्यायिन् शब्द “विद्यार्थी अर्थात् जिसने अपना मन पढाईमें लगाया है” ऐसा अर्थ व्यक्त करता है । ‘यजुः’ शब्दका अर्थ “सत्कार, संगति और उपकारमय कर्मकी प्रेरणा करनेवाला” ऐसा है । सत्कार-संगति-दानात्मक कर्म यज्ञनामसे प्रसिद्ध है । यज्ञ उस कर्मको कहते हैं कि जिस से पूज्योंका सत्कार होवे, संगति अर्थात् संगठन होवे और दान अर्थात् परोपकार, लोकोपकार होवे । इस प्रकारके कर्म यज्ञ होते हैं, ऐसे यज्ञोंका उपदेश यजुर्वेद करता है । इस प्रकारके श्रेष्ठ कर्मों में अपना मन लगाना इस मंत्रका अभीष्ट है ।

मन ऐसे अध्ययनमें लगाना चाहिए कि, जिसके पूज्योंका सत्कार करनेमें, संगठन बढ़ानेवाले कार्य करनेमें और

लोकोपकार के कार्य करने में मनुष्योंकी प्रवृत्ति हो सके । मनके विषयमें वेद कहता है:—

यत्ते दित्सु प्रराध्यं

मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ॥

ऋ. ५।३९।३॥ सामवे० २।५२४

(ते) तेरा (दित्सु) दानशील, उदार (प्र-राध्यं) सिद्ध और शांत (मनः) मन (बृहत् श्रुतं) बहुत ज्ञानयुक्त, बहुश्रुत (अस्ति) है ।

अर्थात् मन परोपकारशील, शांत और ज्ञानसे भराहुआ होना चाहिए । मनका स्वरूप और उसका हेतु निम्नलिखित मंत्रमें वर्णन किया है:—

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृश्ये कं

मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ॥

विश्वे देवाः समनसः सकेता

एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ऋ. ६।९।५॥

(कं) आनंददायक (ध्रुवं ज्योतिः) स्थिर तेज (दृश्ये) ज्ञान लेनेके लिये (अन्तः निहितं) अंदर अर्थात् अंतःकरणके स्थान में रखा है यही । (मनः) मन (पतयत्सु) दौड़नेवालों के अंदर (जविष्ठं) अत्यंत वेगवान् है । (सकेताः) एक उद्देश से प्रेरित हुए हुए (समनसः) एक मतवाले (विश्वे देवाः) सब ज्ञानी (एकं क्रतुं) एक ही कार्यको (साधु) उत्तम रीतिसे (अभि-वि-यन्ति) करते हैं ।

इस मंत्रमें कहा है कि, मन तेजोरूप, आनंददायक और वेगवान् है, उसीसे सब जाना जाता है । इस प्रकारके सुसंस्कृत मनसे युक्त हुए ज्ञानी पुरुष जिस उद्देश से जिस कार्यको करना चाहते हैं, उसको उत्तमतासे सिद्ध करते हैं । और देखिए:—

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ॥

अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्

गावो न यवसे विवक्षसे ॥

ऋ. १०।२५।१॥

हे ईश्वर ! (नः) हम सबको (भद्रं मनः) कल्याणकारक मन (भद्रं दक्षं) कल्याणकारक बल (उत) और (भद्रं क्रतुं) कल्याणकारक कर्म (अपि वातय) प्राप्त कराओ । (अधा-अथ) पश्चात् (ते सख्ये) तेरी मित्रतामें और (अन्धसः=अन्+धसः) प्राण शक्तिके (मदे) हर्ष में हम सब (वि रणन्) विशेष प्रकार गायन करते रहें । (न गावः) जिस प्रकार गौवें (वः विवक्षसे यवसे) आपके बड़े जौ-अर्थात् धान-के खेत में आनंद करतीं हैं ।

इस मंत्रमें “भद्रं मनः” ये दो शब्द और “तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।” (वह मेरा मन शिवसंकल्पमय होवे) यह यजुर्वेद अ. ३४।१-६ का वचन एकही भाव रखता है ।

भद्रं मनः ।

(ऋ. १०।२५।१)

शिवसंकल्पं मनः ।

(यजु. ३४।१-६)

ये दोनों वेदोंके भाव एकसेही हैं । इसी दृष्टिसे ये सब सूक्त देखने चाहियें । तथा:—

मनो ज्योतिर्जुषतम् ॥

तैत्ति० सं. १।५।३।३॥

मनो जूतिर्जुषतम् ॥

यजु. वा. सं. २।१३॥

“ज्योतिरूपी मनका (जुषतं) प्रेमके साथ उत्तम उपयोग कीजिए ।” तथा:—

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते

मनो दानाय सूरयः ॥

ऋ. १।४८।४॥

“(उषः यामेषु) उषःकालके समय (ये ते सूरयः) जो कोई श्वानी (दानाय मनः) दानकेलिये मन (प्र युञ्जते) लगाते हैं ।”

ज्ञानी लोग सवेरेसेही अपना मन परोपकारके कार्योंमें डालते हैं । तथा:—

अनर्शरार्ति वसुदामुप स्तुहि

भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

सो अस्य कामं विधतो न रोषति

मनो दानाय चोदयन् ॥

ऋ. ८।९९।४॥ अथर्व. २०।५८।२॥

(*अन्-अर्श-रार्ति) जिसका दान हानिकारक नहीं है और जो (वसु-दां) धन देता है उसकी (उप-स्तुहि) स्तुति करो । (इन्द्रस्य) इन्द्र-परमात्माके (रातयः) दान (भद्राः) कल्याण-कारक हैं । जो (अस्य कामं) इस ईश्वरकी इच्छा के अनुसार (विधतः) कार्य करता है, उस पर (सः) वह (न रोषति) क्रोध नहीं करता । और (मनः) मन (दानाय) दानके लिये (चोदयन्) प्रेरित करता है ।

मनको दानके कर्मों में लगाना चाहिए, दान अच्छीप्रकार देना चाहिए, जिसका परिणाम हितकारक हो सके । कभी अनर्थ उत्पन्न करनेवाला दान नहीं देना चाहिए । इसप्रकार मनको किस कार्यमें प्रवृत्त करना चाहिए उसका वर्णन इस मंत्रमें है । मन बहुत चंचल है, उसको वशमें रखना बहुत कठीन है, यह सबका अनुभव है । चंचल मनका निरोध अभ्याससे हो सकता है । मन एकाग्र करनेके समय, जब वह भटकने लगता है, तब उसको वापस लाकर उसी स्थान पर स्थिर करना चाहिए; इस प्रकार बारबार करनेसे मन एकाग्र हो सकता है । इस विषयमें “मन-आवर्तन-सूक्त” संपूर्ण देखने योग्य है । परंतु यहां केवल दो ही मंत्र देता हूँ:—

* (अन्) नहीं (अर्श) दुःख, हानि, नाश (रार्ति) दान अर्थात् जिसमें हानि नहीं ऐसा दान ।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ॥
 तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥
 यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ॥
 तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥

क्र. १०।५८॥

“जो तेरा मन इस (विश्वं) सब विश्वमें दूर दूर (जगाम) भटकता है, उसको (इह) यहां (आवर्तयामसि) वापस लाता हूं, ताकी स्थिति और जीवन उत्तम होवे ॥ जो तेरा मन भूत भविष्य और वर्तमानकी दूर दूरकी बातोंमें भटकता है, उसको मैं स्थिति और जीवन के लिये यहां वापस लाता हूं ।”

यह सब सूक्त क्र. १०।५८ । में देखने योग्य है । इस सूक्तका ऋषि “गोपायनः” (गो-प-अयन) अर्थात् इंद्रियपालक है । (गो) इंद्रियोंके (प) पालनमें (अयन) गति अर्थात् प्रयत्न करनेवाला । यह ऋषि है और “मन-आवर्तनं” अर्थात् “मनको वापस लानेका अभ्यास” ही देवता है । इसके साथ शिवसंकल्प सूक्त (यजु. वा. सं. ३४ अ.) देखने योग्य है । उनमेंसे एक मंत्र नीचे देता हूं:—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते-
 ऽमीशुभिर्वाजिन इव ॥ हृत्प्रतिष्ठं यद-
 जिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु. वा. सं. ३४।६॥

“जिसप्रकार उत्तम सारथी घोड़ोंको चलाता है, उसीप्रकार मनुष्योंके इंद्रियरूपी अश्वोंको जो चलाता है, और जो हृदयमें रहता हुआ, अजर और वेगवान है, वह मेरा मन उत्तम विचार-युक्त होवे ।” और:—

मनो-चाकायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ॥

तैत्ति० आ० १०।६६॥ (आ०प्र०)

“मेरे मन, वाणी और शरीर से सब पवित्रही कर्म होते रहें ।”
इस प्रकारकी इच्छा हरएकको रखनी चाहिए । तथा:—

मनो हविः ॥

तै. आ. ३।६।१॥

मनो यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु. वा. सं. १८।२९;२२।३३॥

तै. सं. १।७।९।२॥

“मनको हवि समझो” और “उस मनको यज्ञके साथ-यज्ञमें-
अर्पण करो ।” मनका अहंकार नष्ट करनेकी यही युक्ति है ।

इस प्रकार मनका स्वरूप, उसके धर्म, उसका कार्य और
उसको स्वाधीन करनेके उपाय वेदमंत्रोंमें कहे हैं । इस प्रकारके
प्रभावशाली मनको लेकर यजुर्वेद अर्थात् “कर्मवेद” की शरण
लेनी है । यही भाव “मनो यज्ञेन कल्पतां” इस यजुर्वेदमंत्रमें कहा
है । इसप्रकार इस मंत्रका आशय प्रतीत होता है । अब इस
मंत्रके तीसरे उपदेशका विचार करना है:—

(३) साम प्राणं प्रपद्ये ॥

(अहं प्राणं स्वकीयां जीवनशक्ति अवलंब्य साम गीतिमयं
सामवेदं प्रपद्ये प्राप्नोमि ।)

मैं (प्राणं) अपनी जीवनशक्तिको लेकर (साम) शान्ति उत्पन्न
करनेवाले गीतिमय सामवेदको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं ।

इसमें प्राणका सामके साथ संबन्ध बताया है । “प्र+अन्”
शब्दका “विशेष प्रकारका जीवन” ऐसा मूल अर्थ है, और*
“सामन्” शब्दके “सामगायन” शान्ति करनेका उपाय, चित्तको

* सामन् calming, tranquilizing, means of success
against an enemy; साम्=सान्त्वप्रयोगे । साम=शान्ति, शान्तिका उपाय,
विरोधी शत्रुको वश करनेका उपाय ।

स्थिर करनेका अभ्यास, आत्मिक शांति प्राप्त करनेका यत्न, इतने अर्थ हैं। अर्थात् “विशेष जीवनसे शांति प्राप्त करनेका प्रयत्न” इस मंत्रको बताना है।

प्राणायामके अभ्याससे चित्तकी चंचलता नष्ट होती है, और मन स्थिर होता है। मनकी स्थिरतासे शांति प्राप्त होती है। प्राणोंकी उपासना उपनिषदोंमें अनेक स्थानपर वर्णन की है। वेदभी उसीका वर्णन कर रहा है:—

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ॥

प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ॥

प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

—अथर्व. ११।४॥

“प्राण ही मृत्यु है और प्राण ही उष्णता अथवा सहनशक्ति है। इसलिये (देवाः) विद्वान (प्राणं उपासते) प्राणकी उपासना करते हैं। प्राण सत्यवादी मनुष्यको उत्तम लोकोंमें पहुँचाता है ॥ (मातरिश्वानं) आकाशमें व्यापक जो सूक्ष्म वायु है उसको (प्राणं आहुः) प्राण कहते हैं। (वातः) वायुको ही प्राण कहते हैं। भूत भविष्य वर्तमान कालीन सब पदार्थ प्राणमें ही रहते हैं। (प्राणे) प्राणमेंही सब कुछ रहा है ॥”

“तक्मा” शब्दके दो अर्थ हैं। एक बीमारी जिसमें ज्वरके साथ फोडे फुन्सियां आदि होती हैं और दूसरा अर्थ सहनशक्ति, हँसना आनंदकरना इत्यादि है। “तंक—कृच्छ्रजीवने (कष्टका जीवन)” इस धातुसे बननेवाले “तक्मा” शब्दका पहिला अर्थ होता है और “तक्—हसने-सहने च (हँसना और सहना)” इस धातुसे बननेवाले “तक्मा” शब्दसे दूसरा अर्थ सिद्ध होता है। इस मंत्रमें दूसरा अर्थ अभीष्ट है; क्योंकि कि मृत्यु शब्दके साथ विरोध रखनेवाली अवस्था तक्मा शब्दमें बतानी है। मृत्यु शब्द

कष्टका जीवन बताता है और तक्मा शब्द आरोग्यका जीवन बताता है । दोनों अवस्थाएं प्राणके आश्रय से रहनेवाली हैं ।

प्राणकी उपासनासे सत्यनिष्ठ सत्यवादी पुरुषकी योग्यता बढ़ती है । योगशास्त्रमें प्राणायामका महत्व इसीकारण वर्णन किया है । प्राण स्थिर रहनेसे मनकी एकाग्रता होती है, और प्राण चंचल होनेसे मन अशांत होता है । प्राणका अन्नके साथ संबंध है:—

प्राणमन्नेनाप्यायस्व ॥

तै. आ. १०।३६।१॥

महा. उ. १६।१॥

“अन्नसे प्राणकी वृद्धि करो ।” अन्नसे प्राणकी शक्ति बढ़ती है । अन्न शब्दसे यहां सात्विक अन्न विवक्षित है । योग्य पदार्थ खानेसे आयु बढ़ती है और अयोग्य पदार्थ खानेसे बीमारियां बढ़कर मृत्यु के पास जलदी जाना होता है । इस लिये प्राणकी उपासना करनेवालोंको उचित है कि वे उत्तम निरोगी सात्विक अन्न भक्षण करें । इस प्रकार रक्षण किया हुआ प्राण:—

प्राणो रक्षति विश्वमेजत् ॥

तै. ब्रा. २।५।१।१॥

“(विश्वं एजत्) सब हलचल करनेवालेका रक्षण प्राण करता है ।” प्राणकी शक्ति सब शक्तियोंसे बड़ी है, इसलिये उसको यज्ञमें अर्पण करनेका उपदेश निम्न मंत्रमें आया है:—

प्राणो यज्ञेन कल्पतां ॥

यजु. वा. सं. ९।२१॥; १८।२९॥; २२।३३॥

प्राणो हविः ॥

मैत्रा० सं. १।९।१॥ तै. आ. ३।१।१॥

“प्राणको यज्ञमें समर्पण करो” क्यों कि “प्राण हि हविः” है । प्राणोंकी रक्षा अपने उपभोगोंके लिये नहीं करनी चाहिये, परंतु प्राणोंको हवनसामग्री समझकर, जिसप्रकार हवनसामग्रीका यज्ञमेंही उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार सत्कार-संगति-

दानरूप कमौमें अपने प्राणोंका अर्पण करनेकेलिये तैयार रहना चाहिए । प्राण और आयु बहुत अंशमें समानही अर्थ बताते हैं, देखिए:—

प्राणो हि भूतानामायुः ॥

तै. आ. ८।३।१॥

तै. उ. २।३।१॥

“प्राणियोंकी आयु ही प्राण है ।” इसप्रकारकी प्राणशक्तिको सामवेदके साथ लगाना है । सामवेद उपासना (ईश्वरकी भक्तिके साथ मानसपूजा) की सहायता करनेवाले मंत्रोंकी गायनपद्धतिका वर्णन करता है । उपासना, भक्ति आदिका गानेके साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है । चित्त एकाग्र होनेके लिए गायनसे बड़ी सहायता होती है । इन सब बातोंका इस मंत्रोपदेशके साथ विचार करके बोध लेना चाहिए । अब इस मंत्रके चतुर्थ उपदेशका विचार करना है:—

(४) चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये ॥

(अहं श्रोत्रं मदीयां श्रवणशक्तिं अवलंब्य चक्षुः दिव्यचक्षुभूतं आंगिरसो वेदं अथर्ववेदं प्रपद्ये)

मैं (श्रोत्रं) अपनी श्रवणशक्तिको लेकर (चक्षुः) दिव्यज्ञान-नेत्रके समान आंगिरस अथर्ववेदकी (प्रपद्ये) शरण लेता हूं ।

इस मंत्रभागमें “चक्षुः” शब्दसे अथर्ववेदका अर्थ लेना उचित है । ऐसा अर्थ करनेके लिये निम्न आधार हैं । (१) पहिला प्रमाण क्रमप्राप्ति है:—

१ वाचं—ऋचं (ऋग्वेदं).....प्रपद्ये ।

२ मनः—यजुः (यजुर्वेदं)..... ” ।

३ प्राणः—साम.....(सामवेदं)..... ” ।

४ श्रोत्रं—चक्षुः.....(अथर्ववेदं)..... ” ।

इस कोष्टकको देखनेसे ऋग्यजुःसामके क्रमसे, चतुर्थ “चक्षुः” शब्द चतुर्थ अथर्ववेदका वाचक प्रतीत होता है । २ प्रमाण—

अथर्ववेदको ब्रह्मवेद कहते हैं । ब्रह्मशब्द ज्ञानवाची है । ज्ञाननेत्र, ज्ञानदृष्टि आदि शब्दोंमें चक्षुइंद्रियका ज्ञानके साथ संबंध प्रतीत होता है । इस लिये चक्षुशब्दसे ज्ञानवेद, ब्रह्मवेद अथवा अथर्ववेदका ग्रहण हो सकता है । सबही वेद ज्ञानरूप हैं । परंतु यहां इसी वेदको ज्ञानवेद क्यों कहा ? ऐसी कोई शंका कर सकते हैं । सद्विचार, सत्कर्म और सदुपासना ये तीन क्रमशः ऋग्यजुःसामके कार्य होनेके पश्चात्ही दिव्यदृष्टि खुल सकती है, और सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है:—

ॐ { ऋग्वेद स्तुति वाणी सुभाषण सद्विचार प्रशंसावेद
यजुर्वेद यज्ञ मन अनुष्ठान सत्कर्म कर्मवेद
सामवेद उपासना प्राण जीवन सदुपासना उपासनावेद }

अथर्ववेदज्ञान श्रवण स्थिरता दिव्यदृष्टि ब्रह्मवेद

इस प्रकार अथर्ववेदका ज्ञान और दिव्यदृष्टिके साथ संबंध आता है । “अथर्व” शब्दका अर्थ “अ-गति, चंचलताहीन, स्थितप्रज्ञ, स्थिरसुखासन-स्थित-योगी” ऐसा है । इस योगीको ही दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति हो सकती है । इस प्रकार चक्षुशब्द अथर्ववेदका संकेत माना जा सकता है ।

३ रा प्रमाण—अथर्ववेदको अंगिरो वेद अथवा अंगिरसां वेद पेसाभी कहते हैं और चक्षुशब्दका अंगिरसोंके साथ संबंध अथर्ववेदमें बताया है:—

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥

अंगानि यस्य यातवः स्कंभं तं ब्रूहि कतमः खिदेव सः ॥१८॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्यै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

अथर्व. १०।७॥

“जिसका सिर अग्नि और चक्षु अंगिरस हो गये; जिसके अंग (यातवः) गमनशील प्राणी होगये हैं, उसका नाम स्कंभ है

और (सः) वह (कन्तमः) अत्यंत आनंदमय है ॥ वायु जिसके प्राण और अपान हैं, और चक्षु अंगिरस हो गये हैं, दिशा जिसके ज्ञानके साधन हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है ।”

इन मंत्रोंमें चक्षुका अंगिरसोंके साथ संबंध बताया है । इन दो मंत्रोंमें परमात्माका वर्णन है और उसके चक्षु अंगिरस हैं । अंगिरसोंका वेद अथर्ववेद प्रसिद्ध है । अर्थात् अथर्ववेद परमात्माकी आंख है । अस्तु इस प्रकार चक्षुशब्दसे अथर्ववेदका बोध होता है ।

४ था प्रमाण—श्रवणशक्तिके साथ अथर्ववेदकी शरण जाना है । श्रवणशक्तिका ज्ञानके साथ संबंध सनातन है । श्रुतिशब्दका “वेद अर्थात् ज्ञान” ऐसा अर्थ प्रसिद्ध है । विद्वानका नाम बहु-श्रुत और अविद्वानके लिये अल्प-श्रुत शब्द प्रयुक्त होते हैं । अर्थात् श्रवणशक्तिके साथ ज्ञानका संबंध निश्चित है । इस लिये कहा है कि “अपनी श्रवणशक्तिके साथ ब्रह्मवेदकी शरण जाता हूँ ।”

“अंगि-रस्” शब्दका “अंगोंमें रहनेवाला रस” ऐसा अर्थ है । शरीरमें अंगप्रत्यंगोंमें एक प्रकारकी जीवनशक्ति रहती है, उसका नाम अंगिरस है । अंगिरसः, अंग-रसः, अंगीय-रसः, अंगानां रसः (अंगोंके अंदर रहनेवाली जीवनशक्ति) Vitality, vital bower. इसी शक्तिद्वारा शरीरकी व्याधि दूर होती है । इच्छाशक्तिसे इस जीवनशक्तिको संचलित करनेसे अनेक व्याधियाँ दूर की जा सकती हैं । यह इच्छाशक्तिकी चिकित्सा अथर्ववेदमें सैकड़ों स्थानों में कही है । इस लिये इस वेदको ‘आंगिरस-वेद’ कहते हैं । मनको स्थिर करनेकी विद्या इसमें है, इसलिये इसको अथर्व वेद कहते हैं । “अथर्वा” शब्दका हि अर्थ “स्थिर” ऐसा है । इस प्रकार इस वेदका महत्व है ।

अथर्व-वेदका गुरुपरंपरासे श्रवण करनेके लिये कानोंको समर्पित करना है । गुरुपरंपरासे वेदके गुह्य आशयको सुनकर, योगादि साधन जानकर उसका अनुष्ठान करना, और मन एकाग्र

करनेका अभ्यास करके, इच्छाशक्तिको बढ़ाकर, केवल इच्छामात्र-सेही दूसरोंकी व्याधियोंको दूर करके परोपकार करना, श्रवण शक्तिको अथर्ववेदमें अर्पण करनेका तात्पर्य है । (१) वाणी (२) मन और (३) प्राणकी पवित्रताके पश्चात् यह (४) दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है, यह बात मंत्रोपदेशके क्रमसेही जानी जासकती है, इसलिये अब इस क्रमके विषय में यहां विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं ।

इच्छाशक्तिसे व्याधियां दूर होती हैं और इच्छाशक्तिके प्रयोग आंखोंकी वेधक-दृष्टिसे ही हो सकते हैं । चित्तकी स्थिरता और आंखोंमें वेधक-शक्तिके साथ एकही स्थानपर बहुत देरतक दृष्टिकी टकटकी लगानेकी शक्ति जिसको साध्य हुई है, वही अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे दूसरोंको आराम पहुंचा सकता है । इस बातको देखनेसे पता लगेगा कि “चक्षु” शब्दसे ही यहां अथर्वाका उल्लेख क्यों किया है । अथर्ववेदमें कही हुई दिव्य इच्छाशक्तिके प्रयोग चक्षुकी वेधक-दृष्टिसे ही साध्य हैं; इसलिये चक्षुशब्दही उस वेदका उपलक्षण माना है । अस्तु इस प्रकार इस मंत्रभागका विचार होगया । अब मंत्रके पंचम भागपर विचार करना है:—

(५) वागोजः सहौजो मयि प्रणापानौ ॥

(वाक्-ओजः) वाणीका बल, (सह-ओजः) ऐक्यका बल और (प्राण+अपानौ) प्राणोंका बल (मयि) मेरे आत्मामें रहे । मेरे आत्मिक बलके साथ वाक्शक्ति, ऐक्यकी शक्ति और प्राणशक्ति ये तीन शक्तियां रहें ॥

“ओजस्” शब्दके “बल, शक्ति, योग्यता, वीर्य, तेजस्विता” आदि अर्थ हैं । “ओज्” धातुका अर्थ “बलवान होना, तेजस्वी बनना, वीर्यवान रहना” आदि है । शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करनेकी कुशलता ऐसा भी एक अर्थ ओजका है । “उब्ज-आर्जवे” इस धातुसे कई लोग ओजःशब्द बनाते हैं । इस अवस्थामें ओजका अर्थ “सरलता” भी होसकता है ।

मनुष्यकी उन्नतिके लिये वाणीकी शक्ति, वक्तृत्वका तेज और सरल भाषण करनेकी योग्यता, चाहिये । वक्तृत्वकी शक्तिसे सुज्ञ मनुष्य शत्रुओंको भी अपने मित्र बना सकता है । उत्तम वक्तृतासे मनुष्यकी योग्यता, तेजस्विता और सरलता प्रकट होती है । मनुष्यके पास जो वाचाशक्ति है वहही एक विशेषता मनुष्यके पास है, जो किसी अन्य प्राणीके पास नहीं । मनुष्योंकी सब उन्नति उसकी वक्तृत्वशक्तिपर ही निर्भर है । यदि मनुष्योंमें वक्तृत्वशक्ति न होती, तो मनुष्य इतनी उन्नति न कर सकते । मनुष्यकी वाचाशक्तिकी इतनी योग्यता है ।

मनुष्यप्राणी *मेलमिलापसे रहनेवाला है । यदि मनुष्य मिल-जुलकर नहीं रहेंगे तो उनका नाश निःसंदेह होगा । संगति, संमेलन, ऐक्य, एकता ये मनुष्यकी उन्नतिके साधन हैं और विरोध, झगड़ा, भिन्नता, लड़ाई ये मनुष्यके घातके साधन हैं । उन्नति करनेके लिये मनुष्योंको संघ बनाना चाहिए । इसलिये ऋग्वेदमें कहा है:—

संगच्छध्वं संवदध्वं

सं वो मनांसि जानताम् ॥ ऋ. १०।१९१।२॥

“संगठन करो, संवाद करो और मन सुसंस्कारोंसे युक्त करो” यही उपदेश “वागोजः सहौजः” शब्दोंके द्वारा किया है । साथ रहनेसे मिलजुलकर रहनेसे जो बल पैदा होता है वही संगठनकी शक्ति है । मनुष्यकी शक्ति और उन्नतिका प्रमाण उनकी संगठन शक्तिके प्रमाणपर निर्भर है । देखिए:—
प्रयत्न (ज्ञान+संस्कार+आनुवंशिक संस्कृति)

×आशावाद=अभ्युदय ।

संख्या+संगठन+निर्वैरभाव

* निषण्ड वैदिककोश-में “व्रात” शब्द मनुष्यवाचक नामों में (अ० २।३) दिया है । इस व्रात शब्दका अर्थ—Multitude, assemblage, troop, group, company, association, guild, five races of men; संघ बनाकर रहनेवाला ।

इससे पता लगेगा कि, संगठनका अभ्युदयके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है । इस प्रकार संघशक्तिका महत्त्व जानकर अपनी उन्नतिके लिये मनुष्योंको अपनी संघशक्ति बढ़ानी चाहिए ।

“प्राणापानौ” शब्दसे प्राण-शक्तिका वर्णन है । प्राण शब्द जीवन-शक्तिका वाचक है और अपान शब्द दुःखहारक शक्तिका बोधक है । शरीरके अंदर दो व्यापार चलते रहते हैं, एक जीवनकी कला बढ़ानी और दूसरा रोगबीजोंका नाश करना । ये दो शक्तियां शरीरमें बढ़ानी चाहिए । परमात्माने शरीरके अंदर ये दोनों शक्तियां रखी हैं । और शरीरकी आरोग्यता इन्हींके कारण रहती है । इन शक्तियोंका विकास करना मनुष्योंका कार्य है । पूर्वस्थानमें कही हुई इच्छाशक्तिसे दूसरोंको आराम पहुंचानेके लिए अपनी प्राणशक्तिकी सामर्थ्य बढ़ाना चाहिए । प्राणशक्तिकी सामर्थ्य बढ़ानेसे अपनी नीरोगता भी स्थिर होती है । आरोग्य-संपन्न होनेसे सब पुरुषार्थ करनेकी सुगमता होती है, इस लिये प्राणापानकी शक्ति बढ़ानी चाहिए ।

“वाचाशक्ति, संघशक्ति और जीवनशक्ति मेरे आश्रयसे रहें” ऐसी प्रार्थना इस मंत्रमें है । “मयि” सप्तमी विभक्तिका एकवचन है । “अस्मत्” शब्द मूल है उसकी सप्तमी “मयि” होती है । “अस्-मत्” (अस्मत्) अर्थात् अस्ति-मत् (अथवा अस्तित्ववाला, हस्तिवाला) शब्दही बताता है कि जिसका नाश नहीं होता, अथवा जो सद्रूप है, वह अस्मत् है । अस्मत् शब्दका प्रथमा विभक्तिका एकवचन “अहम्” होता है । “अहम्” (अ-हं) का अर्थ “अ-हन्यमान” अर्थात् जिसका हनन अथवा नाश नहीं होता है, जो अविनाशी है । ‘अहं अस्मत्’ ये शब्द “मैं” ऐसा अर्थ बतानेवाले हैं, और इन शब्दोंके अर्थ देखनेसे विदित होता है कि, मेरा नाश नहीं होना है, अर्थात् मैं अ-विनाशी हूं । आत्माका अ-विनाशित्व “अहं; अस्-मत्” इन शब्दोंसेही सिद्ध हुआ । मैं अविनाशी हूं यह विश्वास इन शब्दोंके अर्थ देखनेसे ही होता है ।

(In-dividual soul) अ-विभज्य अविनाशी आत्मा यही अर्थ “अ-हं” शब्द बता रहा है ।

मैं जो अविनाशी आत्मा हूँ, उस मेरे आधारसे वाक्शक्ति, संघशक्ति और प्राणशक्ति स्थिर रहे, यह भाव इस मंत्रका है । प्राण और संगठनके विषयमें बहुत कहा गया है; अब वाणीके विषय में वेदोंका आशय बताना है:—

वाक् त आप्यायताम् ॥ यजु. वा. सं. ६।१५॥

“तेरी वाणीकी उन्नति हो ।” वाचा-शक्तिकी उन्नति करनी चाहिए, वक्तृता ओजस्विनी होनी चाहिए, वाणीके में बल लाना चाहिए इत्यादि भाव यहां हैं । तथा:—

वाग्यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु. वा. सं. १८।२९॥; २२।३३॥

“अपनी वाणीको यज्ञमें समर्पित करो ।” सत्कार-संगति-दानात्मक जो कर्म होता है, उसको यज्ञ कहते हैं; ऐसे यज्ञमें अपनी वाणी अर्पण करनी चाहिए । तथा:—

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता ॥

येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥

अथर्व. १९।९।३॥

(या इयं) जो यह (परमे-स्थिनी) परम उच्च स्थानमें रहनेवाली (ब्रह्म-संशिता) ज्ञानसे तीक्ष्ण बनीहुई (वाग्-देवी) दिव्य वाणी है । (येन एव) जिससे (घोरं) सन्मान्यता और उच्चता; (ससृजे) उत्पन्न होती है (तेन एव) उसीसे (नः) हम सबों में (शान्तिः अस्तु) शान्ति रहे ।

यह वाणीका महत्त्व है । “घोर शब्दके परस्पर विरोधी दो अर्थ हैं (१) परम उच्च (Sublime), सन्मान्य (Venerable) और (२) भयानक (Frightful), भयंकर (Terrific) । ये दोनों यहां लिये जा सकते हैं । दोनों अर्थ लेनेसे निम्न प्रकार दो

भिन्न अर्थ प्रतीत होंगे । (१) जिससे सन्मान बढ़ता है उसीसे हम सबों में शांति बनी रहे; तथा (२) जिससे भयानक अवस्था उत्पन्न होती है, उससे भी हम सबों में शांति स्थिर रहे । वाणीसे झगड़े भी उत्पन्न होते हैं, और सुलह भी होती है; वाणीसे शत्रुभी बनते हैं और मित्रभी बनते हैं । ये दोनों भाव उक्त दो अर्थ देखनेसे व्यक्त होते हैं । वाणीका महत्त्व निम्न मंत्रमें वर्णन किया है:—

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ॥

बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥ ऋ. १।१४।९॥; ५।५।८॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती

मही भारती गृणाना ॥ अथर्व० ५।२७।९॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तिवडा सरस्वती

भारती ॥ मही गृणाना ॥ यजु. वा. सं. २७।१९॥

(इडा) वाणी, (सरस्वती) विद्या और (मही भारती) भरण-कर्त्री भूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवीयां (मयो-भुवः) उत्साह उत्पन्न करनेवाली हैं । ये तीनों (अ-स्त्रिधः) न भूलती हुई (बर्हिः) मनमें (सीदन्तु) बैठें ।

भारती मही (Mother-country) मातृभूमी, सरस्वती (Mother-culture) मातृविद्या अर्थात् मातृसंस्कृति और इडा (Mother-tongue) मातृभाषा ये तीन उपास्य देवता हैं । मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमीके विषयमें सबके मनमें प्रेम और भक्ति सदा रहनी चाहिए । इडाका संबंध “वागोजः” अर्थात् वाणीके बलके साथ है । सरस्वतीका संबंध “-ओजः” से है, क्योंकि जातिके (संघशक्तिके) साथ मातृ-संस्कृति परंपरासे (वंशपरंपरा और गुरुपरंपरासे) आती है । “सरस्-वती” शब्दका मूल अर्थ “प्रवाह-वाली” ऐसा है । मातृसंस्कृति जनताके प्रवाहके साथ साथ आती है । “सह-ओज” शब्दका अर्थभी “साथ साथ शांति. ४

आया हुआ ओज” ऐसा है । मही भारतीका संबंध “प्राण” के साथ है, क्योंकि प्राणोंसेही मातृभूमिकी पूजा और मातृभूमिकी उन्नति करनी होती है । मातृभूमिके चरणोंपर अपने प्राणोंका अर्पण करनाही मातृभूमिकी पूजा और भक्ति है । ये तीनों संबंध देखने योग्य हैं ।

पूर्वोक्त अस्मत् (अहं-मैं) के अन्य रूपोंका अर्थ यहां देखने योग्य है:—

- (१) अस्मत्—(अस्-मत्)=अस्तित्वसे युक्त, सत्तावाला, सत् ।
- (२) अहम्—(अ-हं, अहननीय, अहातव्य)=त्यागनेके लिये अयोग्य, जिसका त्याग नहीं हो सकता, जो दूर नहीं हो सकता । मैं ।
- (३) आवाम्—(आ-अव्)=सब प्रकारसे रक्षण करने योग्य ।
- (४) वयम्—(वय्-गतौ)=गतिमान, हलचल करनेवाले । प्रयत्नशील ।
- (५) मां, मां—(मा—माने, मान्-पूजायां)=सबको मापने गिननेवाला, पूजा करने योग्य ।
- (६) नौ—(नु-स्तुतौ)=स्तुति करने योग्य ।
- (७) नः—(नसते-उपगच्छति)=पास जाने योग्य, प्राप्तव्य, उपास्य, ज्ञेय ।
- (८) मह्यम्—(मह्-पूजायां)=सत्कार करनेयोग्य, पूज्य ।
- (९) मे—(मे-प्रणिदाने)=व्यवहारके लिये योग्य, सब व्यवहारका साधन, (प्र) विशेष प्रकारसे (निदान) शुद्ध, ढूंढने योग्य, अंतिम प्राप्तव्य ।
- (१०) मत्—(मद्-हर्षे)=आनंदका केन्द्र । हर्षका हेतु स्थान ।
- (११) मम—(ममत्-हर्षयतु)= ” ”
- (१२) मयि—(मय्-गतौ)=गतिमान, हलचल करनेवाला । प्रयत्नशील,

अस्मत् शब्दके अन्यरूप “अस्मत्, आवां, नः” के समानही हैं । जैसा-आवाभ्यां, अस्मभ्यं आदि ।

इन अर्थोंको देखनेसे अस्मत् शब्दसे व्यक्त होनेवाला “मैं” अर्थात् आत्मा “अविनाशी, गतिमान, प्रयत्नशील, पूजनीय, उपास्य, ज्ञेय, प्राप्तव्य, शुद्ध, हर्षका स्थान” है, ऐसा बोध होता है । मैं कैसा हूँ, इसका विचार “मैं” वाचक अस्मत् शब्दके सातों विभक्तियोंके रूपोंका विचार करनेसे हो सकता है ।

यहाँ पाठकोंको इतनी बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिए कि, अस्मद् आदि शब्दोंको निपात समझकर उनका अर्थ देखनेकी पद्धति संस्कृत व्याकरणके अनुसार ग्राह्य नहीं । संस्कृतके व्याकरण इन शब्दोंको यौगिक नहीं मानते और न इनके अर्थ करनेकी आज्ञा देते हैं । परंतु मेरे विचारमें प्रत्येक शब्द सहेतुक और अर्थवाला होना चाहिए । विशेष हेतुसे शब्दकी उत्पत्ति हुई है । शब्दोंका प्रयोग अर्थके अनुसार ही प्रारंभ हुआ होगा ।

शब्दोंको निपात मानकर उनका कोई मूल अर्थ नहीं, परंतु उनका रूढीका अर्थ कुछ है, ऐसा माननेसे, “मैं” के लिये ही “अस्मत् (अस्-मत्)” शब्द क्यों प्रयुक्त हुआ ? इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता । “अस्-मत्” शब्द सार्थक है, ऐसा मानकर उसका अर्थ जाननेसे उक्त प्रश्नका उत्तर दिया जा सकता है । “चूं कि मेरा अस्तित्व हमेशा रहनेवाला है-अन्य पदार्थ रहें या न रहें मेरा अस्तित्व सदासे है और सदा रहेगा, इस लिये मैं अस्तित्ववाला- (अस्तिमत्)-हूँ; इसलिये मेरा नाम अस्तिमत् अथवा *परोक्ष-प्रिय-ताके कारण अस्-मत् है ।” इस प्रकार मूल अर्थकी खोज करनेसे प्रत्येक पदार्थका नाम क्यों हुआ इसका परिज्ञान हो सकता है ।

कई शताब्दियोंसे पहिले श्री० माधवाचार्यने ईशोपनिषद्भाष्य लिखनेके समय, ईशोपनिषद्के १६ वे मंत्रके भाष्यमें “अहं” शब्दका “अ-हं” अर्थात् “अ-हेय” ऐसा अर्थ करके सूचित किया है, कि ये शब्दभी यौगिक हैं । इस सूचनाकी प्रेरणासे जब मैंने अस्मत्

* (परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ।) बृहदा. उ. ४।२।२॥; शतपथ-
ब्रा. १४।५।१।२॥ देव गुह्यरीतिसे ज्ञान कहते हैं स्पष्ट रीतिसे नहीं । देव गुह्यरी-
तिको पसंद करते हैं, स्पष्ट रीतिका द्वेष करते हैं ।

शब्दके सातों विभक्तियों के रूप देखे, तो उनके उक्त अर्थ प्रतीत हुए । इनके अर्थ येही हैं इसकेलिये मेरे पास कोई प्रमाण नहीं; जो कल्पना श्री० माधवाचार्यके अर्थको देखनेसे मनमें उत्पन्न हुई वह यहां लिखी है, इसका अधिक विचार मेरेसे अधिक विद्वानोंको करना चाहिए । तबतक साधारण पाठक इसको परिपूर्ण न समझें ।

पूर्वोक्त संबंध बतानेके लिये उन सब शब्दोंको निम्न कोष्टकमें रखता हूँ:—

ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
सूक्त	अध्याय	साम	ब्रह्म
सुभाषण	अनुष्ठान	जीवन	आत्मबल
स्तुति-(प्रशंसा)	यज्ञ-(कर्म)	उपासना-(भक्ति)	ब्रह्म-(ज्ञान)
वाक्	मनः	प्राणः	श्रोत्रं
वाक्शुद्धि	मनःशुद्धि	प्राणशुद्धि	आत्मशुद्धि
उत्तमविचार	उत्तमकर्म	उत्तमउपासना	दिव्यदृष्टि
अग्नि	वायु	सूर्य	अंगिरस
उष्णता	गति	तेज	वीर्य
(Heat)	(Motion)	(Life-light)	(Vitality, force)
संवाद	संगति	संस्कार	संज्ञान
वाग्-ओजः	सह-ओजः	प्राण-ओजः	आत्म-ओजः
Power of speech	Power of unity	Power of life-breath	Power of soul
इडा	सरस्वती	भारती मही	आत्मशक्ति
मातृभाषा	मातृसंस्कृति	मातृभूमि	दिव्यशक्ति
Mother-tongue	Mother-culture	Mother-land	Divinity
वक्त्रत्वशक्ति	संघशक्ति	जीवनशक्ति	ज्ञानशक्ति

वेद—त्रयी

साधक—अवस्था

साधनोंका बल

वेदान्त

सिद्ध—अवस्था

सिद्धियोंका बल

इस प्रकार परस्पर संबंध प्रतीत होता है । यह देखकर और इसका विचार करके पाठक और भी बोध प्राप्त कर सकते हैं । यहां पहिले मंत्रका विवरण समाप्त हुआ । अब द्वितीय मंत्रका विचार करना है ।

मंत्र २

(२) आत्म-परीक्षण और आत्म-सुधार ।



“जो मेरे चक्षु हृदय और मन में छिद्र अर्थात् दोष हों वे बृहस्पति की कृपासे दूर होकर मेरी सब इंद्रियाँ निर्दोष हों । और जगत् का पालक ईश्वर हम सबका कल्याण करे ।” यह दूसरे मंत्रका आशय है ।

इस मंत्रमें तीन अवस्थाएं वर्णन कीं हैं (१) अपने दोषोंको जानना, (२) ज्ञानियोंकी सहायतासे अपने दोषोंको दूर करना और शुद्ध होना (३) और जगदीशकी कृपासे कल्याणको प्राप्त करना ।

कई लोग ऐसे होते हैं कि, जिनको अपने दोषोंका और अपनी त्रुटियोंका ख्याल ही नहीं होता, और वे समझते हैं कि, हम बड़े अच्छे हैं । ऐसे लोगोंका सुधार और उन्नति नहीं हो सकती । जो लोग अपनी परीक्षा प्रतिदिन स्वयं करते रहते हैं, और जिनको अपने दोषोंकी जागृति रहती है उनका सुधार हो सकता है । अपनी न्यूनताओंको जाननाही उन्नतिकी पहिली सीढ़ीपर चढ़ना है ।

जब अपने दोषोंका ज्ञान होता है, और निर्दोष स्थितिकी उच्च अवस्थाकी कल्पना मनमें होती है, तब ज्ञानीके पास जाना अवश्य होता है । बृहस्पति देवगुरुको कहते हैं । विद्वानोंको देव कहते हैं, इनका भी जो गुरु अर्थात् महोपदेशक वह देवगुरु अथवा बृहस्पति होता है । परमेश्वर गुरुओंका गुरु, ज्ञानियोंका ज्ञानी, और उपदेशकोंकाभी उपदेशक है । इसलिये मुख्यतया

उसीको बृहस्पति कहते हैं और गौणवृत्तिसे सब उपदेशकोंको बृहस्पति कहा जाता है । परमेश्वरकी अंतःप्रेरणा और ज्ञानियोंका बाहिरसे उपदेश होनेसे दोष दूर होने लगते हैं । और दोष दूर होनेके पश्चात् परमेश्वरसे आनंद प्राप्त होने लगता है ।

इस मंत्रमें चक्षु शब्द बाह्य इंद्रियोंका दर्शक है । पांच ज्ञान-इंद्रियां और पांच कर्म-इंद्रियां मिलकर दस बाह्य इंद्रियां हैं । बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार ये चार तर्कविषयक और हृदय भक्तिविषयक मिलकर पांच इंद्रियां अंदर हैं । इनके दोषोंके अतिरिक्त शारीरिक दोष, कुटुंबसंबंधी दोष, समाज—जाति—राष्ट्रसंबंधी दोष होते हैं । इन सब दोषोंको दूर करने चाहिए । पितृपैतामहिक क्षेत्रज दोषभी प्रबल होते हैं । इन सब दोषोंको दूर करना परम पुरुषार्थसे साध्य है । बाहिरके दोष शीघ्र दूर हो सकते हैं, परंतु हृदयके और मनके दोष दूर होना अत्यंत कठीन है । बड़े परिश्रमी और अभ्यासी साधकोंके मनमें भी कुविचार उत्पन्न हुवा करते हैं । इसलिये इस मंत्रमें हृदय और मनका उल्लेख करके इनकी ओर विशेष ध्यान देनेकी सूचना की है । बाह्य दशइंद्रियोंमेंसे एकही चक्षु इंद्रियका उल्लेख मंत्रमें आया है । अंदरके पांच केंद्रोंमेंसे दो इंद्रियोंका उल्लेख है ।

१ हृदय

१ हृदय भक्ति... $\frac{1}{4}$ — $\frac{3}{4}$ पूर्ण दृष्टि

१ मन

४ { बुद्धि, चित्त } चिंतन..... $\frac{1}{4}$ — $\frac{3}{4}$ चतुर्थांश दृष्टि
{ मन, अहंकार }

१ चक्षु

१० { पंच ज्ञानेन्द्रिय } ज्ञान
{ पंच कर्मेन्द्रिय } कर्म $\frac{1}{10}$ — $\frac{9}{10}$ दशांश दृष्टि

बाह्य इंद्रियां सर्वथा मनके आधीन होनेसे और मनकी शुद्धि-अशुद्धिपर उनकी भली-बुरी अवस्था निर्भर होनेसे, बाह्य इंद्रियोंपर निरीक्षणका दसवां हिस्सा उनकी परीक्षा करनेके लिये

पर्याप्त है। मनबुद्धि आदिपर सब बाह्य इंद्रियां निर्भर हैं, इस कारण उनकी परीक्षा करनेके लिये बाह्य इंद्रियोंकी अपेक्षा ढाई गुणा अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता है। परंतु जब हृदयके अंदर पूर्ण भक्ति होती है, तब न मन चंचल होता है, और न बाह्य इंद्रियां भटकने लगती हैं। इस लिये अपनी सब सामर्थ्य हृदय-शुद्धिके लिये लगाना चाहिए। हृदयशुद्धिके लिये बाह्य इंद्रिय-शुद्धिकी अपेक्षा दसगुणा और मनकी शुद्धिकी अपेक्षा चारगुण अधिक प्रयत्न होनेकी आवश्यकता है।

शिक्षाप्रणाली कैसी होना चाहिए इसका विचार इस मंत्रसे निश्चित हो सकता है। शिक्षाप्रणालीमें बाह्य इंद्रियोंको ठीक करनेकी ओर जितना ध्यान देना चाहिए, उससे तीनगुणा ध्यान मनको ठीक करनेकी ओर और दसगुणा ध्यान हृदयको ठीक करनेकी ओर देना चाहिए। इसका यह आशय नहीं कि, इंद्रियोंको कमजोर रखना चाहिए, परंतु यहांका आशय इतनाही है कि, (१) शरीर और इंद्रियोंको अवश्य अत्यंत बलवान करना चाहिए। (२) उनसे भी मन बलवान होना चाहिए क्योंकि शरीर और इंद्रियोंका उसे संयम करना है। (३) और इन सबसे हृदय बलवान, शुद्ध और भक्तिसे परिपूर्ण होना चाहिए; क्योंकि हृदयकी उच्चतापर अन्य सब मन आदि साधनोंकी उत्तमता निर्भर है। अस्तु। इस मंत्रके सदृश एक मंत्र अथर्ववेदमें है:—

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः

सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ॥

विश्वैस्तदेवैः सह संविदानः

सं दधातु बृहस्पतिः ॥ अथ. १९।४०।१॥

“(सरस्वती) विद्या संस्कृति* (मन्युमन्तं) तेजस्वी दृढ

* मन्युमान्=spirited (तेजस्वी, हिम्मतवाला, धीर), energetic (बलवान्), vehement (उग्र, प्रबल, तनमनसे कार्य करनेवाला), ardent (मेहनती, दृढ अभ्यासी). मन्, to think.

अभ्यासी मनुष्यके पासही (जगाम) जाती है। इस लिये (यत्) जो (मे मनसः) मेरे मनका और (यत् च मे वाचः) जो मेरे वाणीका (छिद्रं) दोष अथवा न्यूनता हो, (तत्) उस दोषको अथवा उस छिद्रको (विश्वैः देवैः) सब दिव्यगुणोंके (सह संविदानः) साथ रहनेवाला (बृहस्पतिः) ज्ञानका स्वामी (सं-दधातु) ठीक करे।”

विद्या और उन्नति तेजस्वी, हिस्मतवाले, धैर्यशाली, बलवान, उग्र, प्रतापी, प्रबल, तनमनधनसे निश्चयपूर्वक कार्य करनेवाले, दृढ अभ्यासी वीर्यवान पुरुषोंके पास जाकर निवास करती है। आलसी, डरपोक, निस्तेज, निर्वल, चंचल, निर्वीर्य और पुरुषार्थ-हीन पुरुषोंके पास कभी विद्या और उन्नति नहीं रहती। यही वाणीके और मन आदि इंद्रियोंके दोष हैं। इन दोषोंको दूर करना और मन आदि इंद्रियोंको शुद्ध बनाकर उनमें तेजस्विता आदि दिव्य गुणोंकी स्थापना करनी चाहिए, जिससे विद्या और उन्नति पास आकर रहेगी। मन आदि इंद्रियोंके दोषोंको दूर करनेके लिये सब देवताओंके साथ रहनेवाले बृहस्पतिके (अर्थात् सब दिव्य गुणोंके साथ रहनेवाले ज्ञानीके) पास जाना चाहिए। इसीलिये उपनिषद्में कहा है:—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, ग्राप्य वरान्

निबोधत ॥

कठोपनि० ३।१४॥

“उठो, जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।”
तथा:—

उत्तिष्ठतावपश्यतेन्द्रस्य भागमृत्विग्यम् ।

यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥

अथर्व. ७।७२।१॥

(उत्तिष्ठत) उठिए, (अव-पश्यत) चारों ओर देखिए, और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवानका (ऋत्विग्यं) समयके अनुकूल

(भागं) भाग, हिस्सा जानिए । (यदि श्रातं) यदि परिपक्व होगया हो तो ही (जुहोतन) अर्पण करो, परंतु (यदि अ-श्रातं) यदि परिपक्व, तैयार न हुआ हो तो (ममत्तन) आनंदसे ठहरो ।

उठो, चारों ओर देखो और जानो कि ऐश्वर्यवानोंके कर्तव्यका भाग कितना है । जो विचार या पदार्थ तुम्हारे पास तैयार हों, वेही अर्पण करो, यदि ठीक न पका हो तो उदास न हो, शांतिके साथ रहो, और थोड़ी देर इंतजार करो । परोपकारके कार्यमें अपने आपको अर्पण करनेसे पूर्व देखना चाहिए कि मेरा शरीर, मेरा मन और मेरी इंद्रियां परिपक्व होगयीं हैं या नहीं । योग्य पुरुषोंकी सेवा ही जनताको लाभ पहुंचानेवाली होती है । और देखो:—

अश्मन्वतीरीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत

प्रतरता सखायः ॥ अत्रा जहाम

ये असन्नसेवाः शिवान् वयमुत्तरे-

माऽभि वाजान् ॥

क. १०।५३।८॥

“हे (सखायः) भाईयो ! यह (अश्मन्वती) पत्थरोंसे भरी हुई नदी (ईयते) जोरसे चल रही है । (सं रभध्वं) एक दूसरेको सख्त पकड़ो और (उत्तिष्ठत) उठो, सिद्ध होकर चलो और (प्र-तरत) जोरसे तैरो । (ये) जो (अ-सेवाः) सेवन करने अयोग्य पदार्थ (असन्) हैं उनको (अत्र जहाम) यहां ही फेंकते हैं और (वयं) हम सब जब (उत्तरेम) परले तीरपर उतरेंगे तब (शिवान् वाजान्) कल्याणकारक अन्नों और बलोंको (अभि) सब प्रकारसे प्राप्त करेंगे ।

यह संसाररूपी नदी दुःखों और आपत्तियोंके पत्थरोंसे भरी है और इसका वेगभी बहुत है । इसमेंसे अकेला पार नहीं हो सकता । इससे पार होनेके लिये सबको मिलजुलकर एक दूसरोंको अच्छी प्रकार पकड़ना चाहिए ताकि कोई भी न फिसले ।

और सबको एकही समय तैयार होकर जोरसे पार जानेका महान प्रयत्न करना चाहिए । जिनकी सचमुच आवश्यकता नहीं ऐसे बेजरूरी पदार्थोंका मोह छोड़ना चाहिए, क्योंकि उनके बोझसे ही आदमी डूब सकते हैं । यदि हम पार होंगे तो निश्चयसे परले-तीरकी उत्तम भूमिके रसभरे फल हमें मिलेंगे उस समय इन खुष्क और रूखी चीजोंकी हमें कोई आवश्यकता नहीं रहेगी ।

अपने मानस सरोवरसे चलनेवाली इंद्रियव्यापाररूपी नदीमें विषयोंके पत्थर भरे पड़े हैं । पार होना बड़ा मुष्किल है । जब बड़े जोशके साथ बड़ा प्रयत्न किया जाय तभी पार होना संभव है । विश्वामित्रके समान धैर्यधर पुरुषार्थीकी किशतीभी कामके पत्थर पर टकराकर जहां छिन्नभिन्न होती है, वहां इस नदीसे पार होना कितना कठिन है इसकी कल्पना हो सकती है । उक्त मंत्रके साथ निम्न अथर्ववेदके मंत्र देखने चाहिए:—

अश्मन्वतीरीयते संरभध्वं वीरयध्वं प्रतरता

सखायः ॥ अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा

अनमीवानुत्तरेमाऽभि वाजान् ॥ २६ ॥

उत्तिष्ठता प्रतरता सखायोऽश्मन्वती नदी

स्यन्दत इयम् ॥ अत्रा जहीत ये असन्न-

शिवाः शिवान् त्स्योनानुत्तरेमाऽभि वाजान्

॥ २७ ॥

अथर्व० १२।२॥

इस मंत्रमें “वीरयध्वं” (अर्थात् बड़ा पुरुषार्थ) करो, शौर्यवीर्यके साथ बड़ा प्रयत्न करो) ऐसा अधिक उपदेश है । ऋग्वेदके मंत्रमें जहां “अ-शेवाः” (असेवनीय) शब्द है वहां अथर्ववेदमें “दुरेवाः” (दुःखदायी, दुःखपरिणामी) और “अ-शिवाः” (अ-शुभ) ये दो शब्द हैं । तथा ऋग्वेदके “शिवान्” (शुभ) शब्दके स्थानपर अथर्ववेदमें “अन्-अमीवान्” (रोगरहित) और “स्योनान्” (अनुकूल, हितपरिणामी) ऐसे शब्द हैं ।

पुरुषार्थ करनेवालों को मिलता है, वैसाही पुरुषार्थहीनको प्राप्त होता है ।

जैसा क्षत्रिय शूर पुरुष शांतिस्थापन करनेकेलिये अथवा धर्मकी रक्षाकेलिये घोर युद्ध करते हैं । परंतु जब शांति प्रस्थापित होती है, उस समय केवल उन शूरोंको ही लाभ नहीं पहुंचता, परंतु सब मनुष्योंको लाभ होता है । हरएक व्यक्तिको अपने दोष दूर करके अपनी उन्नति करनी चाहिए और पश्चात् सब मनुष्योंके हितके लिये अपने आपको अर्पण करना चाहिए । व्यक्ति और समाजका यह संबंध देखने योग्य है । अस्तु इसप्रकार द्वितीय मंत्रका विवरण समाप्त हुआ । अब तीसरा मंत्र देखना है:—

मंत्र ३

(३) उपासना ।

(१) भूः । भुवः । स्वः ॥

“भू=सत्तायाम् ।” भूः का अर्थ “सत्ता, अस्तित्व, अस्ति, सत्” ऐसा है । सत् चित्-आनंद में से पहिले “सत्” शब्दका अर्थ यहांका भूः शब्द बता रहा है ।

“भुवः—अवकल्पने, मिश्रीकरणे, चिन्तन इत्यन्ये ।” भुव धातुका अर्थ “कल्पना करना, मिश्रण करना और चिन्तन करना” है । सत्-चित्-आनंदमें चित् शब्दका अर्थ यहां का भुवः शब्द बता रहा है । क्यों कि चिंतन करना ही इसका धात्वर्थ है ।

“स्वः” शब्द “स्वर्, सु-वर्, सु-वर्ग, स्वर्ग” इन शब्दोंका निकट संबंधी है । “सुष्ठु अर्ज्यते इति स्वर्गः ।” उत्तमता जिसमें प्राप्त की जाती है वह स्वर्ग है । इसीलिये उसको सु-वर्ग अर्थात् उत्तमताकी

श्रेणी, उत्तम दर्जा, उत्तम श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं। “स्वः” शब्दका “आत्म-प्रकाश” ऐसा अर्थ होता है। यह शब्द अपनी प्रकाशमय अवस्था बता रहा है। इस कारण सत्-चित्-आनन्द में से आनन्द शब्दके साथ इसका संबंध जोड़ा जा सकता है। “स्वः” धातुका अर्थ “प्रकाशित होना” है। इससे इसका अर्थ प्रकाश अथवा प्रकाशमय अवस्था होता है। तात्पर्य आनन्द शब्दका भाव इस शब्दसे टपक रहा है।

भूः	।	भुवः	।	स्वः	॥
सत्ता	।	चितनम्	।	प्रकाशः	॥
सत्	।	चित्	।	आनन्दः	॥
प्राणः	।	अपानः	।	व्यानः	॥
जीवन	।	दुष्टता-नाश	।	शांति	॥
प्रयत्न	।	संगति	।	समता	॥

ये तीनों शब्द जीवनके आधारभूत और उन्नतीके सारभूत तीन तत्वोंको प्रकाशित कर रहे हैं। (१) अपना अस्तित्व रखने-केलिये प्रयत्न होना चाहिए। आत्मिक दृष्टिसे अस्तित्व सदासेही है। परंतु जातीय, समाजीय, राजकीय, आदि अस्तित्व पुरुषार्थसे रखना होता है। (२) अपना अस्तित्व रखनेकेलिये ज्ञान और ऐक्य की आवश्यकता है। ज्ञान और ऐक्यके अभावमें जातीय अस्तित्व रखना असंभव है। (३) समता और शांतिके विना ज्ञान और ऐक्य प्राप्त नहीं हो सकता। समता और शांतिके विना आनन्दभी नहीं मिलता। आनन्दही साध्य है जो अपनी सत्ता और अपने ज्ञानसे अनुभव करना होता है।

उक्त तीन भाव क्रमसे सत्-चित्-आनन्द अथवा भूः-भुवः-स्वः से जानने हैं। ये तीन भाव मनुष्योंके संस्कारों पर बड़े प्रभाव डालनेवाले हैं, इसलिये इनको कभी भूलना नहीं। जिन सात व्याहृतियोंमें से ये तीन व्याहृतियां यहां लीं हैं उनका अर्थ नीचे दिया है:—

सप्तव्याहृति अर्थ गायत्रीके पदोंका गायत्रीके पदोंका अर्थ
व्याहृतिके साथ
संबंध

- १ भूः सत्ता (अस्तित्वं) तत् (तत्) प्रत्यक्ष जो है ।
२ भुवः चिंतनं (ज्ञानं) धियः बुद्धि और कर्म ।
३ स्वः प्रकाशः (आनंदः) देवस्य (देवः) प्रकाशक, ज्ञानी ।
४ महः महत्वं वरेण्यं (वरेण्यं) श्रेष्ठ, उत्कृष्ट ।
५ जनः उत्पादकशक्तिः सवितुः (सवितृ) प्रसविता, उत्पादक ।
६ तपः तेजः (अंधकारनाशः) भर्गः (भर्गः) अज्ञाननाशक तेज ।
७ सत्यं सत्यं तत् (तत्) जिसका अनुभव होता है ।

ओंकार व्याहृति आदियोंके ऋषिदेवता निम्नप्रकार हैं:—

मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
ॐ ओ३म् }	ब्रह्मा	अग्निः	गायत्री
भूः	गौतमः	"	"
भुवः	भरद्वाजः	वायुः	उष्णिक्
स्वः	विश्वामित्रः	आदित्यः	अनुष्टुप्
महः	जमदग्निः	वृहस्पतिः	वृहती
जनः	वसिष्ठः	वरुणः	पंक्तिः
तपः	कश्यपः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
सत्यं	अत्रिः	विश्वेदेवाः	जगती
तत्सवितु० गायत्री मंत्र }	विश्वामित्रः	सविता	गायत्री

इस प्रकार इनका परस्पर संबंध है । “तत्” शब्द “तन्-विस्तारे, श्रद्धोपकरणयोः ।” (फैलना, विस्तृत होना, विश्वास करना, सहाय करना) इस धातुसे बनता है इसलिये इसका अर्थ “व्यापक, श्रद्धा रखने योग्य, सहायक” ऐसा है । जिसका अंगुली-निर्देशसे बोध किया जाता है उस प्रत्यक्ष पदार्थको “तत्” (वह)

शब्दसे बताते हैं । योगियोंको, भक्तों को और ज्ञानियों को परमेश्वर उतना प्रत्यक्ष (साक्षात्) होता है, कि जितना साधारण मनुष्योंको सृष्टिका घनपदार्थ होता है । इसलिये परमेश्वरके लिये “तत्” शब्दका प्रयोग अनेक स्थानोंपर आया है । इन शब्दोंके अर्थ आगले मंत्रमें देखने योग्य हैं:—

(२) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(सवितुः) जगदुत्पादक (देवस्य) ईश्वरके (तत् वरेण्यं भर्गः) उस श्रेष्ठ तेजका (धीमहि) हम सब ध्यान करते हैं कि (यः) जो (नः) हम सबके (धियः) बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है । शब्दोंके विशेष अर्थ:—

(१) सवितुः=(सविता प्रसविता.) =“सु=प्रसवैश्वर्ययोः” (प्रसव और ऐश्वर्य) इस धातुसे सविता शब्द बना है । इसलिये उसका अर्थ उत्पन्न करनेवाला और स्वामी होनेवाला है । किसी चीजको उत्पन्न करना और उसका स्वामी बनना ये दोनों भाव परमेश्वरके विषयमें ही घट सकते हैं ।

(२) देवस्य=प्रकाशक, दाता, ज्ञानी, विद्वान्, आनंदरूप, सहायक, इत्यादि इसके अर्थ प्रसिद्ध हैं ।

(३) भर्गः—“भृज्, भ्रज्” इन धातुओंसे यह शब्द बनता है । तपाना और पकाना ऐसा इनका क्रमशः अर्थ है । तपाकर दोषोंको दूर करना और परिपक्व बनाना ये कार्य इससे प्रतीत होते हैं ।

(४) धियः—बुद्धि और कर्म, ज्ञान और यज्ञ, विचार और आचार । जिससे धारण होती है वह धीः है ।

इन अर्थोंका विचार करके स्वाध्यायशील पाठक इस गायत्री मंत्रसे बहुत बोध ले सकते हैं क्योंकि यह मंत्र “गाय-त्री अर्थात् गानेवालेका रक्षण करनेवाला” है । अस्तु । इस मंत्रके साथ तुलना करनेके लिये निम्न मंत्र देखने योग्य हैं:—

ते इन्द्राऽप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया
सपन्तः ॥ अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते
रायो दावने स्याम ॥ ऋ. २।११।१२॥

(१) हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर ! हम सब (वि-प्राः) ज्ञानी लोग (अपि ते अभूम) तेरेही होकर रहें । (२) (ऋतया सपन्तः) सदाचरणके साथ परस्पर प्रेम करते हुए (धियं वनेम) बुद्धिको प्राप्त करें । (३) (अवस्यवः) परस्पर सहायता करनेवाले हम सब (ते प्रशस्तिं) तेरी प्रशंसाका (धीमहि) चिंतन करते हैं । (४) (सद्यः) इसी समय (दावने) दानके लिये (रायः) धन देनेवाले (स्याम) हम सब होवें ।

इस मंत्रमें चार उपदेश दिये हैं । (१) ईश्वरके भक्त बनकर रहें; (२) सदाचरण और प्रेम करते हुए उत्तम बुद्धि प्राप्त करें; (३) परस्पर सहाय करते हुए ईश्वरके गुणोंका ध्यान करें और (४) धनोंको दानमें अर्पण करें । इन चार उपदेशोंको उक्त गायत्री मंत्रके साथ देखना चाहिए । गायत्री मंत्रमें कही हुई बुद्धिका महत्व गोपथमें कहा है:—

धिया धीरो रक्षतु धर्ममेतम् ॥

—गोपथ. ब्रा. १।५।२४॥

“धैर्यशाली पुरुषको उचित है कि वह बुद्धिद्वारा इस धर्मकी रक्षा करे ।” बुद्धिके विषयमें अथर्ववेद कहता है:—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती
पावमानी द्विजानाम् ॥ आयुः प्राणं प्रजां
पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

—अथर्व. १९।७।११॥

जनमतेही उसकी सहायताके लिये माताके स्तनोंमें दूध तैयार होता है । इसी प्रकार सब स्थानोंपर रक्षा हो रही है । सौंदर्य और आनंदके पश्चात् सृष्टिके निरीक्षणसे पता लगता है कि, सब विश्वमें परमेश्वर की रक्षणशक्ति कार्य कर रही है । (Protection, Motion)

(३) चित्र=“चित्” धातुसे चित्र शब्द बनता है । चित् धातुके अर्थ—“निरीक्षण करना, चित्तैकाग्र्य करना, दक्ष रहना, जानना, आकलन करना, भासमान होना;” । चित्र शब्दके अर्थ—उत्कृष्ट, विलक्षण, तेजस्वी, शुद्ध, स्वच्छ, विचित्र, नाना रूपवाला, चित्र-विचित्र, विविध प्रकारका, आश्चर्यकारक ।

सृष्टिके अंदर परमेश्वरकी विचित्रता प्रतिपदार्थमें दिखाई देती है । वृक्ष वनस्पति, प्राणी और अन्य पदार्थोंकी नानाजातियोंमें नानाभेद विद्यमान हैं । अनेकता, विविधता और विचित्रता सृष्टिका स्वभावधर्मही है । एक ईश्वरकी बनाई हुई यह विविधता है । ऐसा जानकर मनमें विशेष आश्चर्य होनेही लगता है । (Diversity, Variety, Wonderfulness)

(४) सदा-वृद्ध=(सदा-वृद्धः)=सदा से महान् परमेश्वर है । ईश्वर किसी समय छोटा था और पश्चात् बड़ा होगया ऐसी बात नहीं; वह शाश्वत समयसे महान् है । उसकी महानता सृष्टिमें भी दिखाई देती है । सूर्यादिक महानसे महान् तेजोगोल उसीकी महानता सिद्ध कर रहे हैं । (Great-ness, Growth)

(५) सखा=(मित्र)=परमेश्वर सबका परम मित्र है । इसमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं । हमारा सच्चा मित्र ईश्वर ही है । (Love and friendship)

(६) शचि-ष्ठया=(शचि-स्था)=“शची” शब्दके अर्थ—“वाणी, कर्म, प्रज्ञा, शक्ति, सहायता, प्रेम, कौशल्य, वक्तृत्वशक्ति, दयालुता;” हैं । “शचि-ष्ठ” शब्दका अर्थ शचिके साथ रहनेवाला, उत्तम वक्ता, उत्तम कर्मशील, उत्तम बुद्धिमान्, शक्तिमान्, सबका सहायक अथवा परोपकारशील, प्रेमी, कुशल-चतुर, दयालु

है। शचिष्ठ और शचिष्ठा शब्द एकही अर्थ बतानेवाला है। पहिला पुल्लिङ्ग है और दूसरा स्त्रीलिङ्गमें है। (Power, Strength)

(७) वृता=(वृत्, वृत्त, वर्तन, आवर्त, आवर्तन)=भ्रमण, गति, चारंवार वर्तुल गति, ऐसे इसके अर्थ हैं। चारंवार एक समान घुमना, इसका अर्थ है। जगत्में सब गोलगोलांतरोंका और सूर्यादि महान् लोकोंका अपने अपने वृत्तमें नियमित और बार बार भ्रमण चला है, ऋतुओंका क्रमपूर्वक बारबार आना, शीतोष्ण कालोंका यथापूर्व प्रतिवर्ष होना, यह सब इस शब्दसे जाना जाता है। (Rotundity चक्राकार अथवा वैजवी-दीर्घवर्तुलाकार—भ्रमण; Cycle विश्वचक्र; Turning वर्तुलगति; Revolving चक्राकार भ्रमण)

(८) सत्यः—सत्स्वरूप, त्रिकालावाधित, तीनों कालोंमें एक समान सनातन, अटल, शुद्ध, सत्कर्मशील, विजयी, अटल नियमयुक्त इत्यादि भाव सत्य शब्द बताता है। (Eternal law सनातन सत्य धर्म)। सनातन अवाधित नियमोंका प्रवर्तक परमेश्वर है। यह बात सृष्टिके अवाधित अटल नियमोंका निरीक्षण करनेसे मालूम होती है।

(९) मदानां मंहिष्ठः—हर्ष उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंमें ईश्वर सबसे अधिक हर्षदायक है। सब आनंदोंमें उसीसे प्राप्त होनेवाला आनंद श्रेष्ठ है। “मद” शब्दका अर्थ हर्ष, आनंद, स्फुरण है और “मंहिष्ठ” का अर्थ है उदार, दाता, बढ़ानेवाला। इसलिये “मदानां मंहिष्ठः” का अर्थ “आनंदोंका उदारतापूर्वक दान करनेवाला, आनंदको बढ़ानेवाला” होता है।

(१०) अन्धसः=(अन्धस्-अनिति प्राणिति अनेन इति अन्धः)=जिससे प्राण धारण किया जाता है उसको अन्धस् कहते हैं। प्राण धारण करनेका साधन होनेसे वनस्पति भोजनको अन्धस् कहते हैं। अन्न, जीवन, जीवनकला, जीवनशक्ति (life energy), ये इसके अर्थ हैं। जीवनशक्ति देनेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक जीवनका साधन परमेश्वरही है। (Life of life)

(११) दृढा=(दृढं-दृढानि)=मजबूत, शक्तिमान् । सृष्टिमें निरीक्षण करनेसे दृढता प्रतीत होती है । पृथ्वी दृढ़ है, सूर्यचंद्रादि सब दृढ़ हैं । किसी पदार्थमें देखा जाय तो अपने अपने स्थानमें वे पदार्थ दृढ़ हैं ऐसा दिखाई देता है । पृथ्वी गतिमान् होनेपर भी सब पदार्थोंको स्थिर रखनेके लिये जितनी स्थिरता चाहिए उतनी पृथ्वीमें है । इस प्रकार सब विश्वमें देखने योग्य है । (Firmness दृढता, Stability स्थिरता)

(१२) चित्=इसका मूल अर्थ “निश्चित ज्ञान” है । यह शब्द अव्यय होनेपर “निश्चयसे, भी” ऐसे अर्थ बताता है । (Intelligence निश्चित ज्ञान.)

(१३) वसु=(वासयिता)=जिससे प्राणियोंका निवास अच्छी प्रकार हो सकता है । उत्तम रीतिसे रहने सहनेके लिये जो साधन आवश्यक हैं वे सब वसु शब्दसे ज्ञात होते हैं । चूंकि प्राणियोंकी अवस्थाको सृष्टिके पदार्थ सुखमय करते हैं । इसलिये वे वसु हैं । परमेश्वर परमार्थतः सबका निवास कर्ता होनेसे पूर्णतासे वही वसु है । (One who helps to inhabit निवासयिता; Space स्थान । आश्रयदाता)

(१४) आ-रुजे=(रुजो-भंगे)=छिन्नभिन्न करता है । इस क्रियासे परमात्माकी छेदक, भेदक, और विनाशक शक्तिका बोध होता है । (Destroyer प्रलयकर्ता)

(१५) वृषन्=(वर्षणकर्ता)=वृष्टि करनेवाला । जैसा मेघ वृष्टि करके मनुष्य, पशुपक्षी, वृक्षवनस्पति आदिको प्रसन्नतायुक्त करता है, वैसाही परमेश्वर सब आनंदोंकी वृष्टि करके मनुष्योंको तथा प्राणियोंको आनन्द पहुंचाता है । इस शब्दके “उत्साही, शक्तिमान्, प्रभावशाली” आदि अर्थ भी हैं ।

(१६) आ-भर=शब्दका अर्थ देखनेसे परमेश्वर पोषणकर्ता, पालनकर्ता है ऐसा स्पष्ट होता है ।

इन मंत्रोंके ये सोलह पद देखने और सोचने योग्य हैं, इन शब्दोंसे किन किन विशेष गुणोंकी ध्वनि निकलती है यह निम्न क्रोष्टकमें दिया है:—

वैदिक शब्द

अंग्रेजी भाव

गुणोंका बोध

१ कः, का, क्या Beauty, happiness...सौंदर्य और आनंद-

२ ऊती, ऊत्या, ऊतिभिः, अविता, ओम्, ॐ } Protective motion संरक्षक गति.

३ चित्रः..... { Wonderful-ness,
variety } ... { आश्चर्यमयता,
विविधभावयुक्तता. }

४ सदावृधः ...Greatness महत्ता.

५ सखा Love and friendship प्रेम और मित्रत्व.

६ शचिष्ठा.....Power, strength ... बल, शक्तिमत्ता.

७ वृत् Rotundity नियमयुक्त भ्रमण,
गति देनेका धर्म.

८ सत्य: Eternal law सनातन नियम (धर्म).

९ मदानां मंहिष्ठः Blissful..... शांतियुक्त परम आनंद.

१० अन्धसू.....Life energy.....जीवनकला, प्राण.

११ दृढं Stability स्थिरता.

१२ चित् Intelligence निश्चितज्ञान.

१३ वसु.....Space, abode स्थान, निवास करानेकी शक्ति.

१४ आ-रुज् ...Destroyer..... प्रलयशक्ति.

१५ वृषन् Flowing, bestower प्रवाह, दान करना.

१६ आ-भर ...Nourisher पोषण करना.

सृष्टिका विचार करनेसे ईश्वरके ये गुण सृष्टिमें कार्य कर रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। परमेश्वरकी एकता सृष्टिकी विविधताके लिये कारण होगयी है, यह देखकर महान् आश्चर्य होता है और साथ साथ ईश्वरके अतुलसामर्थ्यकी भी कल्पना होती है।

इन गुणोंका चिंतन करनेसे परमेश्वरके महान प्रभावकी कल्पना हो सकती है। इसलिये इन शब्दोंको अच्छे प्रतिभायुक्त काव्यमें यहां ग्रथित किया है। ताकि उपासक लोग इस काव्यका

गायन करते हुए ईश्वरके गुणोंका स्मरण करें, और यथासंभव उन गुणोंको अपनेमें धारण करके अपनी आत्मिक उन्नतिका साधन करें ।

इस प्रकार “कयोति साम” का विचार होगया । अब अगला मंत्र देखना है:—

मंत्र ८

(५) जगत्का एक अधिपति ।

“इस संपूर्ण जगत्का एकही इन्द्र राजा है । हम सबका कल्याण होवे और सब द्विपाद और चतुष्पादोंका कल्याण होवे ।”

इस जगत्का एकही अधिपति है । यहां ओहदेदारोंका बीचमें झगड़ा नहीं । उस एक राजाको मिलनेके लिये किसी दूसरेकी शिफारिसकी जरूरत नहीं । पवित्र होकर उसके पास जानेसे उसका दर्शन होता है । पास जानेके लिये चलनेकीभी जरूरत नहीं, क्योंकि वह जगत्पति सर्वव्यापक होनेसे प्रत्येक मनुष्यके अंदर व्याप्त है । इस लिये केवल अंतःकरणशुद्धिकी आवश्यकता है । जब अंतःकरण पवित्र होगा उसी समय उसका साक्षात्कार होगा । वह सर्वदा सिद्ध है । उसके ठाकुरद्वारेके दरवाजे कभी बंद नहीं होते, सदा खुले रहते हैं । पवित्र बनकर अंदर देखनेका यत्न करना चाहिए ।

वह आनंद और कल्याणका स्रोत है उसके पाससे आनंदके स्रोत और कल्याणकी नदियां बह रही हैं । जो उसमें गोता लगावेगा उसको उस अमृतपानका रसास्वाद मिलेगा ।

उन्नतिके मार्ग सदा सबको खुले रखने चाहिए । मनुष्य अपने स्वार्थके कारण प्रतिबंध खड़े करता है और फंसता है । यदि प्रतिबंध खड़े न करेगा तो सबकी अर्थात् द्विपाद चतुष्पादोंकी अविच्छिन्न उन्नति होगी । हम सबको अपने अंतःकरण

ऐसे पवित्र बनाने चाहिए, कि ईश्वरका कल्याणमय स्रोत उनमेंसे बिना प्रतिबंध चलता रहे। जिसप्रकार मलिनता बढनेसे नालियोंमेंसे पानी चलना बंद होता है उसी प्रकार स्वार्थका कीचड मानवी अंतःकरणमें जमा होनेसे भक्तिका प्रवाह रुक जाता है। अस्तु। इस मंत्रके साथ निम्न मंत्र विचारने योग्य है:—

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृंगिणो
वज्रबाहुः ॥ सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न
नेमिः परि ता बभूव ॥ ऋ. १।३२।१५॥

“(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर (यातः) जंगम और (अवसितस्य) स्थावरका राजा है तथा (शमस्य) शांत और (शृंगिणः) सींगवालोंका भी वह (वज्रबाहुः) दण्डधारी अधिपति है। (स इत् उ) वह ही (चर्षणीनां राजा) सब प्रजामात्रका राजा होकर (क्षयति) रहा है (न) जिसप्रकार (अरान् नेमिः) चक्रनाभीके चारों ओर आरे होते हैं उसीप्रकार (ताः) वह सब प्रजाएं उसके (परि बभूव) चारों ओर हैं।”

अर्थात् परमेश्वर स्थावर और जंगम, शांत और क्रूर, प्राणि और अप्राणि अर्थात् सबका राजा है। चक्रनाभीके समान इस संसारचक्रकी वह नाभी है अर्थात् सब जगत्के लिये वही आधार है। तथा:—

एवा न इन्द्रो मधवा विरप्शी करत्सत्या
चर्षणीधृदनर्वा ॥ त्वं राजा जनुषां धेह्यसे
अधिश्रवो माहिनं यज्ररित्रे ॥ ऋ. ४।१७।२०॥

“(एव) इसप्रकार (मधवा) धनवान् भगवान् (विरप्शी) स्पष्ट उपदेश करनेवाला (अन्-अर्वा) अजातशत्रु और (चर्षणीधृत्) उद्यमी मनुष्योंका धारण पोषण करनेवाला (इन्द्रः) ईश्वर (सत्या करत्) सत्या, शांतता करे। क्योंकि तू (जनुषां राजा)

सब प्रजाओंका राजा है, इस लिये (अस्मे) हम सबके लिये (माहिनं श्रवः) महत्वका यश (धेहि) धारण करो, दो । (यत् जरित्रे) जो तेरे भक्तोंके लिये योग्य होता है वही हम सबको दो ।” तथा:—

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि
विपुरुषं यदस्ति ॥ ततो ददाति दाशुषे
वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदवाक् ॥

ऋ. ७।२७।३॥

“(अधि क्षमि) इस पृथ्वी आदि गोलोंपर (यत् वि=सु-रूपं) विविध रूपवाला जो कुछभी (अस्ति) है उस सब (जगतः) जगत्का और (चर्षणीनां) प्राणीयोंका वही (इन्द्रः राजा) ईश्वर राजा है । (ततः) इसलिये वह (दाशुषे) दानकर्ता अर्थात् परोपकारशील मनुष्यको (वसूनि ददाति) धन देता है । (उपस्तुतः चित्) उसके गुणोंका चिंतन करनेपर (अवाक् राधः चोदत्) वह हमारे पास विविध सिद्धियोंको भेजता है ।”

इस प्रकार सब जगत्का एक अधिपति होनेके विषयमें वेदमें कहा है । ये सब भाव यहां देखने योग्य हैं । अब अगले मंत्र देखिए:—

मंत्र ९ से ११ तक ।

(६) कल्याण प्राप्तिके लिये प्रार्थना ।

इन तीन मंत्रोंमें मित्र वरुणादि शब्द एकएक विशेष गुणके प्रतिनिधि बनकर रहे हैं । उनके विषयमें निम्न अर्थ देखने योग्य हैं:—

(१) मित्रः—मान्यकर्ता, प्रेमी सहायक, यह प्रेमका प्रतिनिधि है । (Friend, love) प्रेम, भक्ति, प्रकाश, ज्ञान ।

(२) वरुणः—“वृ-वरणे” धातुसे यह शब्द बना है । जुनवा,

पसंद करना, हंसक्षीरन्यायसे अच्छेका स्वीकार और बुरेका परित्याग करना, पूर्णको अपनेमें मिलाना और हीनको दूर करना, ये भाव इसमें हैं । (Selection) पसंदी, श्रेष्ठता, (Honour) सम्मान, (Unity) स्वीकार करना, मिलाना आदि गुणोंका यह प्रतिनिधि है ।

(३) अर्यमा=(अर्य-मा; अर्य-मन्; आर्य-मन)=आर्य अथवा अर्य शब्दका श्रेष्ठ अर्थ है । श्रेष्ठता, सरलता, प्रगति, उन्नति आदि भाव अर्य शब्द बताता है । श्रेष्ठ-मन, सरल-मन, प्रागतिक-मन इन शब्दोंके साथ मिलनेवाला अर्य-मन् शब्द है । श्रेष्ठ कनिष्ठका विचार, सरलता और टेढ़ेपनका निश्चय, प्रगति (उन्नति) और परागति (अवनति) का संकल्प जिससे जाना जाता है वह *अर्यमापन है । सदसद्विवेकबुद्धि अथवा न्यायबुद्धिका यह प्रतिनिधि है । (Justice न्याय)

(४) इन्द्र:=शक्ति, सामर्थ्य, प्रभुत्व, स्वामित्व आदि शौर्यवीर्यादि गुणोंका इंद्र शब्द यहां प्रतिनिधि है । (Active power, strength)

(५) बृहस्पति:=(बृह:-पति:)=ज्ञानपति, वाक्पति । यह शब्द ज्ञान, गुरु-त्व, पठनपाठन आदिका प्रतिनिधि है । (Knowledge)

(६) विष्णु:=व्यापकशक्ति । जो व्यापकशक्ति सब जगत्की रक्षा कर रही है । दुष्टोंका नाश और सुष्टोंका रक्षण जो करती है उस शक्तिको यह शब्द बताता है । (Preservative force)

(७) उरु-क्रम:=(उरु) महान् (क्रम) क्रम, अनुक्रम, व्यवस्था । इस जगत्में क्रम अर्थात् पूर्वापर व्यवस्था उरु अर्थात् महान् है । वसंत ग्रीष्मादि ऋतुओंका क्रम, शीतोष्ण कालोंका क्रम, बाल-तरुणवृद्धावस्थाका क्रम, जन्ममरणका क्रम, सूर्यादि गोलोंके

* अर्य-मा=आर्यत्वका गिनने मापने वाला; अर्य-मन्=श्रेष्ठ मनवाला; अर्यमा-पन=अर्यमाका भाव; अर्य-मापन=आर्यत्वको मापनेका धर्म ।

भ्रमणकी व्यवस्था ये सब क्रम महान् शक्तिसे व्यवस्थित हुए हैं । उस नियामक शक्तिका यह प्रतिनिधि है । (उत्तु Excellent, क्रम: Order)

(८) वातः—“वा-गतिगन्धनयोः” धातुसे वात शब्द बनता है । गति, हलचल और प्रतिबंधक शक्तिका गंधन अर्थात् नाश ये अर्थ वात शब्दके यौगिक हैं । वात अथवा वायुके साथ जीवनशक्ति अथवा प्राणशक्तिका नित्य संबंध है । इसलिये जीवनशक्ति, हलचल और प्रतिबंध-निवारण इन शक्तियोंका यह प्रतिनिधि है । (Movement, life energy)

(९) सूर्यः—प्रकाश और दिनका देवता है । काल, समयका भी इसको प्रतिनिधि कहा है । प्रकाशशब्द प्रबुद्धता (En-light-en-ment) का द्योतक है ।

(१०) पर्जन्यः—(पर—जन्य, पुर—जन्य) पूर्ति अथवा तृप्ति जिससे प्राप्त होती है । मेघोंको पर्जन्य इस लिये कहते हैं कि उनकी वृष्टिसे सब जगत्की तृप्ति होती है । तृप्ति (Contentment) का प्रतिनिधि यह है ।

(११) अहः=(अ—हर्, अ—हन्)=अहननीय, अविनाशी कालका यह प्रतिनिधि है । दिनका कोई समय व्यर्थ खोनेके लिये योग्य नहीं । अ-हर् । अ-हरणीय । (Imperishability)

(१२) रात्रीः—(रमयित्रीः, राति सुखं इति) दूसरोंको सुख देनेकी शक्तिका यह प्रतिनिधि है । रात्रिशब्दका मूल अर्थ सुख देना, रममाण करना, उपकार करना है । (Benevolence) रूपा, दयालुता, परोपकार ।

(१३) इन्द्राग्नी=(इंद्र—अग्निः)=इन्द्र शब्द प्रभुत्वका द्योतक है और अग्नि शब्द तेजका द्योतक है । (Power and spirit) शक्ति और तेजसिता ।

(१४) इन्द्रावरुणौ—(इंद्र—वरुण) शक्ति और ऐक्य । (Power and unity or honour)

(१५) इन्द्रापूर्वणौ—(इन्द्र—पूर्वण)=पुष्टि करनेवालेको पूर्वण अर्थात् पोषक कहते हैं । शक्ति और अभ्युदय (Power and prosperity)

(१६) इन्द्रासोमौ—(इन्द्र—सोम)=शांतिका प्रतिनिधि सोम है । शक्ति और शांति । (Power and tranquility)

इतने गुणोंके द्वारा हमारा कल्याण हो, यह प्रार्थना और इच्छा इन मंत्रोंमें है । ये विविध गुण हमारे अंदर प्राप्त होकर, ये परमात्मशक्तियां हमारे अंदर स्थिर होकर हमारा अभ्युदय होवे, यह भक्तकी इच्छा इसमें व्यक्त होती है । मानवी उन्नतिके साधक ये गुण हैं । इनपर अवश्य विचार होना चाहिए, और इनकी अपने अंदर स्थापना करनेके लिये प्रयत्न होना चाहिए ।

उक्त विस्तृत अर्थ मनन करनेके लिये सुगम हो, इस हेतुसे उक्त आशयको निम्न कोष्टकमें रख देता हूं और साथ साथ कयोति साम (मंत्र ४-७) के शब्दभी रखे हैं, पाठक दोनोंके अर्थोंको साथसाथ सोचें—

परमात्म-शक्ति { कयोतिसामके } मनुष्य-व्यक्ति-में गुण
{ शब्दोंकी तुलना }

(१) मित्रः—मित्रता.....(सखा)...भक्ति, प्रेम, प्रकाश.....
(Devotion and love)

(२) वरुणः—{ वरण, }...(सदा-बुधः)...श्रेष्ठत्व, उत्तमत्व, सत्त्व,
{ वर-त्व } ऐक्य (Honour and unity)

(३) अर्यमा—आर्यमन.....(सत्यः)...सरलता, न्यायीपन, निःप-
क्षपातीपन (Justice)

(४) इन्द्रः—ऐश्वर्य.....(शचिष्ठा)...प्रभुत्व, स्वामित्व (Sove-
reignty, Power)

(५) बृहस्पतिः—ज्ञानपति (मदानां मंहिष्ठः)...ज्ञान, तृप्ति
(Knowledge, satisfaction)

(६) विष्णुः—व्यापक...(अन्धस्)...रक्षकशक्ति (Preserva-
tive power, vitality)

- (७) उरुक्रमः—{महान् }...(वृत्)...महान् व्यवस्था
{अनुक्रम} (Excellent order)
- (८) वातः—गति.....(आ-रुज्) ...हलचल, भंजन (Movement, decomposition)
- (९) सूर्यः—प्रकाश.....(चित्)...प्रबुद्धता (Enlightenment)
- (१०) पर्जन्यः—पूर्तिजनक...(वृषन्)...तृप्ति (Contentment)
- (११) अहः—अविनाशित्व...(ऊती)...विजयशालित्व (Unbeat-
enness)
- (१२) रात्रीः—रमयिता.....(का, कः)...परोपकार, रमणीयता...
(Benevolence,
happiness)
- (१३) इन्द्राग्नी—ऐश्वर्य-तेज...(वसुः)...शक्तियुक्त तेजस्विता...
(Power and spirit)
- (१४) इन्द्रावरुणौ—”-ऐक्य...(दृढः)...शक्तियुक्त ऐक्य (Power
and unity)
- (१५) इन्द्रापूषणौ—”-पोषण (आ-भरण)...शक्तियुक्त पुष्टि (Power
and growth)
- (१६) इन्द्रासोमौ—”-शांति...(चित्रः)...शक्तियुक्त शांति (Power
and tranquility)

इस प्रकार ईश्वरके गुणोंको अपने अंदर धारण करने चाहिएँ।
इस प्रकार ग्यारह मंत्रोंतक विचार हुआ, अब अगला मंत्र
देखना है:—

मंत्र १२

(७)—जलसे तृप्ति ।

“दिव्य उदकसे हमारे अभीष्टकी प्राप्ति, हमारा कल्याण, हमारी तृषाशांति और हमारा रोग-निवारण हो।”

जलसे तृषाशांतिका अनुभव सब प्राणिमात्रको है । जलसे रोग निवारण होते हैं, और रोगनिवारण होनाही अभीष्ट प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ करने और कल्याणप्राप्तिके मार्गपर चलनेका मुख्य साधन है । जबतक शरीरमें बीमारियां सतातीं रहेगीं तबतक कोई पुरुषार्थ होना असंभव है । सब पुरुषार्थके लिये आरोग्य और शक्तिकी अत्यंत आवश्यकता है । वह आरोग्य जलके योग्य उपयोगसे प्राप्त होता है ।

उदकके वैदिक सौ नाम निघण्टु अ. १।१२ में दिये हैं उनमेंसे कई नामोंका विचार यहां करनेसे जलके विषयक वैदिक कल्पनाका पता लगेगा ॥ (१ पुरीषं-पुरि-शं)=शरीररूपी पुरी अथवा नगरीमें शं अर्थात् शांति सुख उत्पन्न करनेवाला उदक है । (२ पुरि-इषं) शरीररूपी नगरीका यह इषं अर्थात् अन्न, भोग, उत्साहशक्ति, स्वास्थ्य है । (रेतः)=शरीरका वीर्य जलही है । वीर्यके साथ जलका संबंध है । (३ जन्म)=शरीरमें जननशक्ति उदकके कारण स्थिर रहती है । (४ सु-क्षेम)=उत्तम क्षेम अर्थात् आराम, उन्नति, सुरक्षितता, बुनियाद, शांति, सुख देनेवाला पानी है । (५ धरुणं)=शरीरकी धारणा करनेवाला जलही है । (६ अ-हिः)=त्यागने योग नहीं । शरीरमें जलकी आवश्यकता बहुत है इसलिये जलपानका निःशेष त्याग नहीं किया जा सकता । (७ अ-क्षरं)=अविनाशक अर्थात् शरीरका नाश न करनेवाला उदक है । (८ तृप्तिः)=जलसे प्यास बुझती है और तृप्ति होती है । (९ रसः)=रुचि आस्वादके लिये यही कारण है । (१० मेषजं) उदक औषध है । (११ जलाषं) आराम देने (Healing) वाला यही जल है । सुखशांति यही देता है । (१२ ओजः)=शरीरका ओज अर्थात् सतेज बल इसी जलके कारण रहता है । (१३ सुखं)=सु अर्थात् उत्तम ख अर्थात् इन्द्रियां अथवा इन्द्रियोंका आरोग्य जलसेही रहता है । (१४ क्ष-त्रं)=‘क्षत्’ अर्थात् व्रण, फोडा, फुनसी, तकलीफ आदिसे ‘त्र’ अर्थात् बचानेवाला उदक ही है । (१५ शुभं)=सब शुभगुण इसके आश्रयसे रहते हैं ।

(१६ यशः)=यश भी इसीसे प्राप्त होता है क्योंकि यशके लिये आरोग्य और आरोग्यके लिये जलकी आवश्यकता होती है । (१७ अन्नं)=उदकही अन्न है । (१८ हविः)=शरीरके यज्ञमें उदकरूपी हविका हवन होता है । (१९ पवित्रं)=पवित्रता करनेवाला उदक है । (२० अमृतं)=अमरपन अर्थात् अपमृत्यु आदिको हटाकर आरोग्यके साथ पूर्ण आयु देनेवाला जल है । (२१ शुक्रं)=वीर्य और बल जलसे प्राप्त होते हैं । (२२ वारिः)=सब दोषोंका निवारण करनेवाला उदक है । इस प्रकार जलके नामोंका विचार करनेसे उदकके गुण विदित होते हैं । पाठकोंको चाहिए कि वे सौ नामोंका विचार करके जलके सब गुणोंको जानें । विशेष कर वैद्योंको इसका ज्ञान भली प्रकार हो सकता है । अब देखना है, कि वेदमें जलचिकित्साके विषयमें क्या कहा है:—

अप्सु मे सोमो अत्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ॥

अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ ऋ. १।२।१२

“मुझे सोमने कहा कि, (अप्सु अंतः) उदकोंमें (विश्वानि भेषजानि) सब दवाईयां हैं । अग्नि सब सुखदेनेवाला और पानी सब औषधियोंसे युक्त है ।”

आप इद्रा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ॥

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

ऋ. १०।१३।७६॥ अथर्व० ३।७।५॥, ६।९।१।३॥

“जल निश्चयसे ही (भेषजीः) औषधी है । जल (अमीवचातनी) रोगोंको हटानेवाला है । जल सब रोगोंकी दवा है । (ताः ते) वह जल तेरे लिये (भेषजं कृण्वन्तु) दवाई बने ॥”

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः
पुनन्तु ॥ विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः
शुचिरा पूत एमि ॥

ऋ. १०।१७।१० अथर्व. ६।५।१।२॥

यजु. वा. सं. ४।२॥

“जलरूपी मातापं (अस्मान्) हम सबको शुद्ध करें; (धृतेन) उदकसे पवित्रता करनेवाले हम सबको पवित्र करें; (देवीः) दिव्य उदक (विश्वं रिपं) सब मल निश्चयसे (प्रवहन्ति) बहा देते हैं । (उत् इत्) निश्चयपूर्वक (आभ्यः) इस जलसे (शुचिः पूतः) शुद्ध और पवित्र होकर मैं (एमि) आगे बढ़ता हूँ ॥

इस प्रकार जलके विषयमें वेदमंत्रोंका उपदेश है । इन मंत्रोंको साथ साथ देखनेसे इस बारहवें मंत्रका अर्थ अधिक स्पष्ट हो सकता है । अब अगले मंत्रका विचार करना है:—

मंत्र १३

(८) निष्कंटक भूमि ।

“हे भूमि ! तू हम सबके लिये सुखदायक, निरोगी और विस्तृत आश्रय देनेवाली होकर सुखदायक हो ।”

इस मंत्रमें “अनृक्षरा” शब्द विशेष विचार की दृष्टिसे देखने योग्य है । इसके दो अर्थ होते हैं । (१) अनृ-ऋक्षरा अर्थात् कंटक-रहित । रहनेका स्थान कांटोंसे भरा हुआ न हो । बालवच्चे घूमते रहते हैं, मनुष्य संचार करते हैं, उनको कांटोंका उपद्रव न हो, ऐसी भूमि साफ और शुद्ध रखनी चाहिए । (२) अनृ-क्षरा अर्थात् अ-मनुष्य-नाशिनी, मनुष्योंका विनाश न करनेवाली भूमि हो । कई भूमियां ऐसी होती हैं, कि जिसमें बुखार ज्वर आदि रोगोंकी पीड़ा बहुत होती है, और कई स्थान ऐसे होते हैं कि, जहां आरोग्य और बलकी वृद्धि होती है । रहने सहनेके लिए स्थान ऐसा होना चाहिए कि, जो बीमारियां उत्पन्न करनेवाला न हो ।

“निवेशनी” शब्दका अर्थ वस्ति करके, घर बनाकर रहने योग्य । भूमि ऐसी हो कि, जहां व्याधियां न हों और घर बनाकर

रहने योग्य हो । इसी प्रकारकी भूमिपर रहनेसे सुख शांति और आराम मिल सकता है । देखिए:—

पृथिवी नः पार्थिवात्पातृहसोऽन्तरिक्षं
दिव्यात् पातृहसान् ॥

क्र. ७१०४।२३॥ १०।५३।५॥

अथ. ८।४।२३

“हम सबको पृथिवी पार्थिव पापसे (पातु) रक्षण करे । और अंतरिक्ष आकाशस्थ पापसे वचावे ।”

पार्थिव और आकाशस्थ पापोंका यहां उल्लेख है । पृथ्वीसंबंधी पाप भूमिके कारण होनेवाले रोग हैं और आकाशस्थ पाप हवाके कारण होनेवाले रोग हैं । मंत्रमें “अंहसः पातु ।” ऐसे शब्द हैं । दवाना, दुःख उत्पन्न करना ऐसा “अंह” धातुका अर्थ है, जिससे “अंहस्” शब्द बनता है । अर्थात् अंहस् शब्दका मूल अर्थ “दुःखदायक विकार” है । पृथिवीके कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखदायक विकार और आकाशस्थ वायुके कारण उत्पन्न होनेवाले दुःखदायक विकार ऐसे दो भाग व्याधियोंके होते हैं, जिनका उल्लेख उक्त मंत्रमें है । पृथिवी जल और वायु जहां अच्छा हो वहां ही रहना चाहिए ।

यहां मंत्र १३ का विचार हुआ । अब अगले मंत्र देखने हैं:—

मंत्र १४ से १६ तक ।

(९) जलसे बल और सुखकी प्राप्ति ।



इन तीन मंत्रोंमें जलोंसें निम्न बातें होती हैं, ऐसा कहा है:—

(१) मयः—उत्साह, भोग, सुख और आनंद ।

(२) ऊर्जः—हिम्मत, शक्ति, बल, तेजस्विता ।

शांति. ६

(३) रणः—शब्द, वक्तृत्व, आराम, स्वास्थ्य, कुशलता ।
(रणशब्दे गतौ च)

(४) चक्षुः—तेज, चमकाहट, दृष्टि, दर्शन, दिव्यदृष्टि ।

(५) शिव-तमः—अत्यंत कल्याण ।

(६) रसः—रुचि, आस्वाद ।

(७) क्षयः—निवास, रहना, आरोग्य, गति, हलचल ।
(क्षि निवासे)

इतने विशेष महत्वके शब्द इन मंत्रोंमें आये हैं । जलके कारण इतने गुण प्राप्त होते हैं । इन शब्दोंको जलनामोंके साथ तुलना करके देखना चाहिए । जलनामोंका विवेचन मंत्र १२ के स्पष्टीकरण में किया है । इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् अगला शांतिमंत्र देखिएः—

मंत्र १७

(१०) सची शांति की प्राप्ति ।

इस मंत्रमें कहे हुए बाह्य पदार्थोंके साथ किन किन आंतरिक पदार्थोंका संबंध है, इसका विचार निम्न कोष्टकसे होगाः—

बाह्य पदार्थ

आंतरिक भाव.

(१) द्यौः—द्युलोक (Light), (स्वः)...मस्तिष्क, मगज (Brain)

(२) अंतरिक्षं (Middle place) (भुवः)...अंतःकरण (Heart)

(३) पृथिवी—(Earth) (भूः) ...स्थूल शरीर (Physical body)

(४) आपः—(Water) (आपः) { प्राण (Life breath)
रुचि, स्वाद (Taste)
रुधिर (Blood)

(५) ओषधयः } (Herbs) (रसः) { अन्न... (Food)
(६) वनस्पतयः } (दवाईयां (Medicines)

होवे ॥ ५ ॥ मित्रसे, (अमित्रात्) शत्रुसे, ज्ञात पदार्थसे और अज्ञात पदार्थसे हम सबोंके लिये अभय होवे । रात्रीके समय और दिनके समय हम सब निर्भय होकर रहें । और सब दिशामें रहनेवाले हमारे मित्र बनकर रहें ।” तथा:-

अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः ॥

—बौधाय. ध. शा. २।१०।१७।२९ ॥

“मेरेसे सब भूतोंके लिये अभय है -” अर्थात् मैं किसीको आजसे कष्ट नहीं दूंगा । यह सबको अभय करनेका प्रारंभ है । सब अच्छे कार्योंका प्रारंभ अपनेसे ही होना चाहिए । दूसरेको प्रेरणा करनेकी अपेक्षा स्वयं उत्तम कर्म करना आसान और अच्छा है । अस्तु । इस प्रकार २२ वे मंत्रका विचार हुआ; अब २३ वां मंत्र देखेंगे:-

मंत्र २३

(१५) जनताका द्वेष करनेवालेका नाश ।

“जल और वनस्पतियां हम सबको लाभदायक हों । परंतु जो अकेला दुष्ट हम सबोंसे द्वेष करता है और हम सब जिस एकसे द्वेष करते हैं, उनको जल और वनस्पतियां हानिकारक हों ।”

इस मंत्रमें एक बड़े समाज नियमका उपदेश किया है । अल्पपक्ष और बहुपक्षका परस्पर वर्ताव कैसा होना चाहिए, इस विषयका विचार इस मंत्रने किया है । एकको उचित नहीं कि वह सबका द्वेष करे । जो एक सब दूसरोंका द्वेष करता है, और जिस एकको सब दूसरे बुरा कहते हैं वह दण्डनीय होता है ।

इस मंत्रमें “हम” (अस्-मत्) शब्द आस्तिक, धर्मात्मा, सदाचारियोंके लिये आया है, और “यः” (जो) शब्द अधार्मिक, दुष्ट फिसादी दस्युके लिये आया है, अर्थात् उक्त मंत्रका भाव

यह हुवा कि “एक दुष्ट मनुष्य हम सब धार्मिकोंसे द्वेष करता है इसलिये हम सब धार्मिक पुरुष उक्त एक दुष्टसे द्वेष करते हैं। इसलिये उसका अहित होवे।”

मंत्रमें “(१) यो अस्मान् द्वेष्टि।” (जो हम सबोंका द्वेष करता है) यह वाक्य दूसरे “(२) यं वयं द्विष्मः।” (जिसका हम सब द्वेष करते हैं) इस वाक्यका कारण है। अर्थात् हम सब उस दुष्टसे इसलिये द्वेष करते हैं कि वह प्रथम हम सबोंसे द्वेष करता है। यदि वह सबोंसे द्वेष न करता, तो हममेंसे कोईभी उससे द्वेष न करता। वह एक आदमी झगड़ा डालता है, इसलिये हम सबको आवश्यकता होती है कि, उसको अलग करें।

एक को अपनी उन्नति सबकी उन्नतिमें समझनी चाहिए। सबकी अवनतिके साथ एकको अपनी अवनति समझनी चाहिए। समाजको बिगाड़कर, समाजका अहित करके, सब जातिको कष्ट देकर किसी एकका अपना ही लाभ करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

अल्प संख्यावाले पक्षको उचित नहीं कि, वह सब राष्ट्रका अहित करके अपने लाभका साधन करें। और बहुसंख्यावाले पक्षकोभी उचित नहीं कि वह अपने संख्याके जोरसे अल्प-संख्यावालोंको दवाले।

“जल और औषधियां हम सबको लाभदायक हों।” इस पहिले कथन में सबको लाभ होनेकी ही प्रार्थना है। परंतु यदि कोई ऐसा दुष्ट मनुष्य समाजमें उत्पन्न हुआ कि, जिसके कारण सब समाजको कष्ट होनेकी संभावना हो, तो उसका निवारण सबको मिलकर करना चाहिए। अस्तु। इसप्रकार इस मंत्रपर विचार करना चाहिए। इस मंत्रके साथ निम्न मंत्र देखने योग्य हैं:—

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभि-

र्मधवञ्छूर जिन्व ॥ यो नो द्वेष्ट्यधरः

सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥

“हे इन्द्र ! आज बहुत (ऊतिभिः) रक्षकोंके साथ (नः) हम सबोंके पास आओ । और श्रेष्ठताओंके साथ, हे शूर (मघ-वन्) ऐश्वर्यवान्, हम सबको (जिन्व) आगे बढ़ाओ । जो हमारा (द्वेष्टि) द्वेष करता है उसको (अधरः) नीचे (सस्पदीष्ट) दबाओ और (यं उ) जिसका हम सब द्वेष करते हैं वह प्राण छोड़ दे अर्थात् वह मरजावे ।” तथा:—

अजैष्माद्यासनाम चाभूमाऽनागसो
वयम् ॥ जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो
यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु । यो नो द्वेष्टि
तमृच्छतु ॥

ऋ. १०।१६।५॥

“आज हम सब (अजैष्म) विजय करें और प्रबल होंगे । तथा (अन्-आगसः) निष्पाप और निष्कलंक होंगे । (पापः संकल्पः) पापमय विचार जो जाग्रत अवस्थामें और (स्वप्नः) निद्राकी अवस्थामें उत्पन्न होता है, वह (तं ऋच्छतु) उसके पास जावे कि (यं द्विष्मः) जिससे हम सब द्वेष करते हैं । जो हम सबोंसे द्वेष करता है उसके पास वह पापका विचार चला जावे ।” हमारे पास कोई पापी विचार न रहे ।

इन मंत्रोंको इस २३ वे मंत्रके साथ विचारना चाहिए । अब अगला मंत्र देखिए:—

मंत्र २४

(१६) ज्ञानदृष्टिका उदय और दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति ।

(१) “ज्ञानियोंका हित करनेवाली वह शुद्ध दिव्यदृष्टि पहिले-सेही उदयको प्राप्त हुई है ।”

ज्ञानदृष्टिके उदयसेही सब कुछ उन्नति होती है । दिव्यदृष्टि, शांति. ७

ज्ञानदृष्टि, ज्ञाननेत्र ये सब एक अर्थवाले शब्द हैं । ज्ञानियोंका श्रेष्ठत्व इसी ज्ञाननेत्रके खुलनेसे होता है । इस दिव्यदृष्टिका परमेश्वर-शक्ति और परमेश्वर-रूपाके साथ घनिष्ठ संबंध है । सब दिव्य तेजका उदय उसीसे होता है । इसलिये कहा है कि दिव्यज्ञान पहिलेसेही उदय हुआ है ।

सूर्यका उदय होनेपरभी लोगोंको जलदी उठकर अपने कार्य करने चाहिए । इसीप्रकार ज्ञानचक्षुका उदय होनेपरभी उससे सहायता लेनी मनुष्योंके पुरुषार्थपर निर्भर है । यदि मनुष्य पुरुषार्थहीन होंगे, तो ज्ञानचक्षुके उदय होनेसे कोई लाभ नहीं होगा । इसलिये कहा है कि यह दिव्यचक्षु ज्ञानियोंका अर्थात् देवोंका हित करनेवाला है । अन्योका हित उस दिव्य चक्षुसेभी नहीं होता ।

देव उसको कहते हैं कि जो विजयशील, विजिगीषु, व्यवहार-दक्ष, तेजस्वी, आनंदित, पुरुषार्थी, परोपकारी, और विद्वान् होते हैं । ऐसे पुरुषोंका हित दिव्यचक्षु द्वारा होता है । यह भाव "देव-हितं चक्षु" का है; यह आशय ध्यानमें रखकर, उक्त दिव्य-चक्षुका धारण करके, ईश्वरीय दिव्यज्ञानदृष्टिसे अपनी उन्नतिका साधन करना हरएकको उचित है ।

"सौ वर्षपर्यंत देखें, जीते रहें, सुनते रहें, प्रवचन करते रहें, अदीन होकर रहें, इतनाही नहीं, परंतु सौ वर्षोंसे भी अधिक जीते रहें," और अदीन रहकर पुरुषार्थ करते रहें । यह भाव इस मंत्रके उत्तरार्धका है ।

"सौ वर्ष देखते रहें" इसका अर्थ-आंखकी दर्शनशक्ति सौ वर्ष-तक बराबर ठीक कार्य करनेके लिये योग्य रहे । ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिससे अल्प आयुमें नेत्रोंकी शक्ति क्षीण न हो सके ।

"सौ वर्ष जीते रहें" इसका तात्पर्य इतना है कि हम अपमृत्युसे न मरें । सौ वर्ष होनेके पश्चात् स्वाभाविक मृत्युसे मरण हो ।

ब्रह्मचर्यादि धार्मिक नियमोंका यथायोग्य पालन तथा आहार, विहार, व्यायाम आदिका यथायोग्य सेवन करनेसे दीर्घ आयु हो सकती है ।

“सौ वर्ष सुनते रहें”—कानकी श्रवणशक्ति सौ वर्षतक उत्तम अवस्थामें रहे । देखना और सुनना इन दो शक्तियोंका मंत्रमें उल्लेख है । अन्य इंद्रियोंकी अन्य शक्तियां भी सौ वर्षपर्यंत अच्छी अवस्थामें रहें यह आशय यहां है । पांचमें चलनेकी शक्ति, हाथोंमें कार्य करनेकी शक्ति, पेटकी पचनशक्ति, मनकी मनन-शक्ति, हृदयकी भक्ति आदि सब सौ वर्षपर्यंत उत्तम अवस्थामें रहे । किसी शक्तिका नाश थोड़ी आयुमें न हो, यह तात्पर्य यहां समझना चाहिए ।

“सौ वर्षतक श्रवचन अर्थात् भाषण करते रहें । अर्थात् हमारी वक्तृत्वशक्ति हमारे पास सौ वर्षपर्यंत उत्तम अवस्थामें रहे ।

“सौ वर्षतक अदीन होकर रहें,” इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण होनेसे शारीरिक दीनता उत्पन्न होती है । और सामाजिक राजकीय और जातीय अवस्था विगड़नेसे सामाजिक बंधनके कारण पार-तंत्र्य होता है, जिससे मनुष्य दीन और हीन होता है । इसमेंसे किसी प्रकारकीभी हीनता हमारे पास न आवे । हम सदा बल-वान्, उत्साही, पुरुषार्थी, स्वतंत्र और आनंदवृत्तियुक्त रहते हुए अपना कर्तव्यपालन सदा करते रहें ।

“सौ वर्षसेभी अधिक” जीते रहकर आमरणान्त पुरुषार्थ करते रहें । यहां कोई यह न समझे की मनुष्यकी आयु केवल सौ वर्षकीही है । सौसे अधिक वर्षतक मनुष्य जिंदा रह सकता है । मनुष्योंका व्यक्तिशः और संघशः प्रयत्न आयुष्यवृद्धिके लिये होना चाहिए ।

इस मंत्रमें कही हुई बातें पुरुषार्थसे होनेवाली हैं । यदि मनुष्य धर्म नियमोंके अनुकूल पुरुषार्थ करेंगे तो इनकी प्राप्ति हो सकेगी । धर्मके नियम इसीलिये हैं । ये बातें सबको प्राप्त हो सकती हैं, ऐसा समझकर सब लोगोंको इनकी प्राप्तिके लिये

अहर्निश पुरुषार्थ करना चाहिए । क्यों कि पुरुषार्थसेही सब उन्नति की प्राप्ति हो सकती है ।

इसलिये सबको उचित है कि, वचनसेही अपने इंद्रियोंको बलवान् बनाकर, उनसे अत्याचार न करता हुआ, धार्मिक जीवन व्यतीत करके, वृद्ध अवस्थातक अपनी सब शक्तियां ठीक रखनेका यत्न करे । यत्न करनेसे सबकुछ साध्य होता है । केवल बातें करनेसे सिद्धि नहीं होती । अब अंतमें वैदिक प्रार्थना करके इस अध्यायकी समाप्ति करनी है:—

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय

आयुः प्रतरं दधानाः ॥ आप्यायमानाः

प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञि-

यासः ॥

ऋ. १०।१८।२॥

तै. आ. ६।१०।२॥ मा. गृ. २।१।१७

“(मृत्योः पदं) मृत्युके पांव को (योपयन्तः) परे ढकेलते हुए (यदा) जब आप (द्राघीय आयुः) दीर्घ आयुष्यको (प्र-तरं) अधिक लंबा बनाकर (दधानाः) धारण करते हुए (एत) चलेंगे अर्थात् अपना पुरुषार्थ करेंगे तब (आप्यायमानाः) अभ्युदयको प्राप्त होते हुए (प्रजया धनेन) प्रजा और धनसे युक्त होकर, और (यज्ञियासः) पूजनीय बनकर (शुद्धाः पूताः) शुद्ध और पवित्र (भवत) बनेंगे ।” इसी मंत्रके सदृश अथर्ववेदका मंत्रभी देखने योग्य है:—

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः

प्रतरं नवीयः ॥ आप्यायमानाः प्रजया धने-

नाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ अथर्व. १८।३।१७॥

“(क-स्ये) आत्माकी छाननीमें (मृजानाः) शुद्ध बनकर

* “कस्ये” (क-स्ये) = “क” का अर्थ आत्मा । और “स्य” का अर्थ छाननी, चलनी, अथवा छाज है ।

(रिप्रं) अशुद्धि, मल अथवा अपमृत्युको (अति यंति) धोकर परे जाते हैं । और (नवीयः प्रतरं आयुः) नई दीर्घ आयुष्यको (दधानाः) धारण करते हैं । (अध-अथ) पश्चात् हम सब (प्रजया धनेन) प्रजा और धनके साथ (आप्यायमानाः) अभ्युदयको प्राप्त होते हुए, (गृहेषु) अपने घरोंमें (सुरभयः) सुगंधिरूप बनकर (स्याम) रहें ।”

आत्माकी चलनीमें अपने आपको छानकर पवित्र बनाना है । क्यों कि अपने दोषोंका अपने आपकोही पता होता है, इसलिये अपना सुधार अपने आपकोही करना चाहिए । यदि मनुष्य अपनी शुद्धि स्वयं न करेगा तो कोई दूसरा नहीं कर सकता ।

मलोंको अर्थात् दुष्टताको दूर करनाही व्यक्तिका और समाजका सुधार है । मकानोंमें अथवा जातिमें सुगंधरूप बनकर रहना चाहिए । सुगंधके पास सब आते हैं, दुर्गंधके पास कोई नहीं जाता । अपने घरमें, जातिमें और अपने राष्ट्रमें सुगंधरूप होकर रहना चाहिए, अर्थात् सबको आकर्षित करके सबको उन्नत करना चाहिए । और इस पवित्र कार्य करनेके लिये अपना आयुष्य बहुत बढ़ाना चाहिए ।

अस्तु । इस अध्यायका प्रत्येक मंत्र अद्भुत अर्थोंका प्रकाश कर रहा है । पाठक एक एक मंत्रका अच्छा विचार करके, वेदके, गुह्य आशयको समझ कर, उस ज्ञानसे अपना आचरण सुधार कर, अपनी और समाजकी उन्नतिका साधन करनेमें तत्पर हों ।

ॐ (व्यक्तिकी) शांतिः ॥ (जनताकी) शांतिः ॥

(जगत्की) शांतिः ॥

वैदिक सुभाषित ।

मूल मंत्रोंके सुभाषित ।

१ इन्द्रो विश्वस्य राजति । एक ईश्वर विश्वका राजा है ।
(मंत्र ८)

२ वृंह मा । मुझे बलवान् करो । (मं. १८)

३ मित्रस्य चक्षुषा समी- { हम सब आपसमें मित्रकी दृष्टिसे
क्षामहे । { देखते हैं । (मं. १८)

४ मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि { मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणि-
भूतानि समीक्षे । { योंको देखता हूं । (मं. १८)

५ मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि { मुझे मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणी
भूतानि समीक्षन्ताम् । { देखें । (मं. १८)

६ ज्योक् ते संदशि जीव्यासम् । तेरे साक्षात्कारमें दीर्घ आयुतक
जीता रहूं । (मं. १९)

७ नो अभयं कुरु । हम सबको निर्भय करो । (मं. २२)

८ तच्चक्षुर्देव-हितं पुरस्ताच्छु- { वह ज्ञानियोंका हित करनेवाला
क्रमुचरत् । { दिव्य शुद्ध प्रकाश पहिलेसेही
उदय हुआ है । (मं. २४)

स्पष्टीकरण में आये हुए मंत्रोंके सुभाषित ।

९ भद्रं वद गृहेषु च । घरोंमें शुभ वाणी बोलो । (मं. १)

१० भद्रं वद पुत्रैः । लड़कोंके साथ उत्तम भाषण करो ।

११ वाचं वदत भद्रया । उत्तम वाणीसे बातचीत करो ।

- १२ यस्तन्न वेद किमृचा करि- { जो तत्त्वको नहीं जानता वह
प्यति । { मंत्रसे क्या करेगा ? ।
- १३ वाचं पुनन्ति कवयो { बुद्धिमान् कवि वाणीकी पवित्रता
मनीषिणः । { करते हैं ।
- १४ विश्वेदेवाः समनसः { एक उद्देशसे प्रेरित हुए एक मत-
सकेता एकं क्रतुमभि { वाले सब ज्ञानी एक कर्तव्यकोही
वियन्ति साधु । { उत्तम रीतिसे कर सकते हैं ।
- १५ भद्रं नो अपि वातय मनः । ... कल्याणकारक मन हमसबको दो ।
- १६ मनो दानाय चोदयन् । मन दानके लिये प्रेरित करो ।
- १७ अनर्शरार्तिं वसुदामुप- { जो हानिकारक दान नहीं करता,
स्तुति । { उस धन-दाताकी स्तुति करो ।
- १८ सो अस्य कामं विधतो न { उसकी इच्छानुसार कर्तव्यपालन
रोषति । { करनेवालेपर (वह प्रभु) क्रोध
नहीं करता ।
- १९ सुषारथिरश्वानिव यन्म- { जिस प्रकार उत्तम सारथी अपने
नुष्यान् नेनीयतेऽभीशु- { घोड़ोंको लगामोंसे स्वाधीन रखता
भिर्वाजिन इव । { है, उस प्रकार उत्तम मन मनुष्यों-
की इंद्रियोंको स्वाधीन रखता है ।
- २० तन्मे मनः शिवसंकल्प- { वह मेरा मन कल्याणमय विचा-
मस्तु । { रोंसे युक्त होवे ।
- २१ मनो यज्ञेन कल्पताम् । ... मन सत्कर्मसे बढे ।
- २२ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । ... प्राणके आधारपर सब रहता है ।
- २३ प्राणो यज्ञेन कल्पताम् । ... प्राणको सत्कर्ममें लगाओ ।
- २४ संगच्छध्वं संवदध्वं सं { संघ बनाओ, उत्तम भाषण करो,
वो मनांसि जानताम् । ... { और मनोंको सुसंस्कृत करो ।
- २५ वाग्यज्ञेन कल्पताम् । वाणी सत्कर्मसे बढे ।
- २६ सरस्वती मन्युमंतं जगाम । विद्या पुरुषार्थोंके पास जाती है ।
(मं. २)
- २७ उत्तिष्ठत । अवपश्यत । ... उठो और चारों ओर देखो ।
- २८ उत्तिष्ठत प्रतरत सखायः । भाईयो ? उठो और जोरसे तैरो ।

- २९ शिवान् वयमुत्तरेमाऽभि वाजान् ।..... { पार होनेपर ही शुभ शक्तियां प्राप्त होंगी ।
- ३० अश्मन्वतीरीयते, संरभ-ध्वम् ।..... { पथरोंवाली नदी जोरसे चल रही है इस लिये आपसमें संघ करो ।
- ३१ संरभध्वं, वीरयध्वम् ।..... एक बनो और शौर्य करो ।
- ३२ अत्रा जहीत ये असन् दुरेवाः ।..... { जो बुराईयां हैं उनको यहाँ ही छोड़ो ।
- ३३ अत्रा जहाम ये असन्न-शेवाः ।..... { जो सेवन करने अयोग्य हैं उनको यहाँ ही छोड़ते हैं ।
- ३४ अत्रा जहीत ये असन्न-शिवाः ।..... { यहाँ ही उनको छोड़ो जो अमंगल हैं ।
- ३५ त्वे इन्द्राप्यभूम ।..... हे ईश्वर? हम सब तेरे वनकर रहें ।
- ३६ धियं वनेम ऋतया स-पन्तः ।..... { हम सब सदाचरणके साथ बुद्धिको प्राप्त हों ।
- ३७ सेदु राजा क्षयति चर्ष-णीनाम् ।..... { सब मनुष्योंका वही एक राजा है । (मं. ८)
- ३८ इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा ।..... { स्थावर जंगमका एकही प्रभू है ।
- ३९ त्वं राजा जनुषाम् ।..... तू प्रजाओंका एक राजा है ।
- ४० इन्द्रो राजा जगतश्चर्ष-णीनाम् ।..... { स्थावर जंगमका एकही राजा है ।
- ४१ आपश्च विश्वमेषजीः ।... जलमें सब दवाइयाँ हैं ।
- ४२ अग्निं च विश्वशंभुवम् ।.. अग्निसे सब कल्याण होता है ।
- ४३ परमेण धाम्ना दृंहस्व ।... श्रेष्ठ तेजके साथ हमको बढ़ाओ ।
- ४४ उत्तिष्ठत । संनह्यध्वम् ।... उठो अपनी तैयारी करो ।
- ४५ मित्रस्य यायां पथा ।..... मित्रके मार्गसे चलें ।
- ४६ दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् । { मनुष्योंकी बुराईयोंको शीघ्रही दूर करेंगे
- ४७ ईशा वास्यमिदं सर्वम् ।... इस सब जगत्में ईश्वर व्याप्त है ।
- ४८ तेन त्यक्तेन भुंजीथाः ।..... उसके दिये हुएका ही भोग करो ।

- ४९ मा गृधः ।.....लालच न करो ।
 ५० कस्य खिद् धनम् ?.....भला ! धन किसका है ?
 ५१ श्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जित्वा । { हे धनवान् शूरो ! सबको श्रेष्ठ
 भावनाओंसे प्रेरणा करो ।
 ५२ अजैष्माऽद्या सनाम ।... आजही प्रबल होकर विजय करेंगे ।
 ५३ अभूम अनागसो वयम् ।... हम सब निष्कलंक बनें ।
 ५४ मृत्योः पदं योपयन्तः ।... मृत्युके पांवको दूर हटाओ ।
 ५५ आप्यायमानाः प्रजया { प्रजा और धनके साथ बढ़ो ।
 धनेन ।.....
 ५६ शुद्धाः पूता भवत ।..... शुद्ध और पवित्र बनों ।
 ५७ कस्ये मृजाना अतियन्ति { आत्माकी चलनीसे छनकर शुद्ध
 रिप्रम् ।..... { बनेवाले आपत्तिसे पार होते हैं ।
 ५८ अध स्याम सुरभयो गृहेषु ।... अब घरोंमें सुगंधरूप बनकर रहेंगे
 ५९ अभयं नोऽस्तु ।..... हम सबको अभय प्राप्त हो ।
 ६० अभयं मित्रात् ।..... मित्रसे अभय प्राप्त हो ।
 ६१ सप्त ऋषीणां च हविषा { सप्त इंद्रियोंसे प्राप्त ज्ञानसे हम
 अभयं नोऽस्तु ।..... { सबोंको अभय होवे ।
 ६२ नूनं अश्यां गतिम् ।..... निश्चयसे उन्नति प्राप्त होवे ।
 ६३ गुप्ता वः सन्तु ।..... आप सब सुरक्षित रहें ।
 ६४ अंहसः पातु ।..... पापसे बचावे ।
 ६५ आपो अमीव-चातनीः ।... जल रोगोंको दूर करनेवाला है ।
 ६६ शुचिरापूत एमि ।..... शुद्ध और पवित्र होकर मैं आगे
 बढ़ूंगा ।

इस पुस्तक में आये हुए मंत्रोंकी सूची

मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ
१ अजैष्माद्या सनाम...	९७	उत्तिष्ठत प्रतरत.....	५८
अनर्शरार्ति वसुदामुप	३७	उत्तिष्ठत मा खपत...	५९
अप्सु मे सोमो अव्रवीत्	७९	२५ उत्तिष्ठत संनह्यध्वं...	८६
अभयं द्यावापृथिवी...	९३	उत्तिष्ठतावपश्यत ...	५६
५ अभयं नः करत्यंतरिक्ष	९४	उत्तिष्ठन्विन्दते श्रियं	५९
अभयं मित्रादभयममि	९४	उषो ये ते प्र यामेषु...	३६
अभयं वो अभयं नो...	९३	ऋभ्यस्तं निर्भजामो	३२
अभयं सर्वभूतेभ्यः...	९५	३० ऋग्वेदस्य पृथिवीस्थानं	३२
अभी षु णः सखीनाम्	२०	ऋचं वाचं प्रपद्ये...	१७, ३०
१० अश्मन्वतीरीयते	५७, ५८	ऋचां प्राची महती दि	३३
अहानि शं भवंतु नः...	२२	ऋचो अक्षरे परमे...	३१
आप इद्वा उ भेषजीः	७९	ऋचो विद्वान् पृथिवीं	३२
आपो अस्मान्मातरः	७९	३५ एवा न इन्द्रो मघवा	७२
आपो हि ष्टा मयोभुवः	२४	कया त्वं न ऊत्याऽभि	२०
१५ इन्द्रोतिभिर्वहुलाभिः	९६	कया नश्चित्र आभुवदू	१९
इन्द्रो यातोऽवसितस्य	७२	कस्त्वा सत्यो मदानां	१९
इन्द्रो राजा जगतश्चरष	७३	कस्ये मृजाना अतियन्ति	९५
इन्द्रो विश्वस्य राजति	२१	४० चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये...	४२
इयं या परमेष्ठिनी...	४८	तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ता	२९
२० इळा सरस्वती मही...	४९	तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो	१८, ६३
ईशा वास्यमिदं सर्वं...	८९	तवाहमग्न ऊतिभिः...	८७
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य	५६	तस्मा अरं गमाम वो	२५

मंत्र	पृष्ठ
४५ तिस्रो देवीर्वह्निरेदं	४९
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा	६४
दृते दृंह मा ज्योक्ते...	२६
दृते दृंह मा मित्रस्य...	२६
द्यौःशांतिरंतरिक्षं शांतिर	२५
५० धिया धीरो रक्षतु...	६०
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं...	३५
नमस्ते अस्तु विद्युते...	२७
नमस्ते हरसे शोचिषे	२७
परमेण धाम्ना दृंहस्व	८६
५५ पश्येम शरदः शतं...	२७
पृथिवी नः पार्थिवात्	८१
प्राणमन्त्रेनाप्यायस्व...	४१
प्राणमाहुर्मातरिश्वा...	४०
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा	४०
६० प्राणो यज्ञेन कल्पतां	४१
प्राणो रक्षति विश्वमे	४१
प्राणो हविः.....	४१
प्राणो हि भूतानामायुः	४२
भद्रं नो अपि वातय	३६
६५ भद्रं मनः	३६
भद्रं वद गृहेषु च...	३१
भद्रं वद पुत्रैः	३१
भूर्भुवः स्वः	१८, ६०
मनो जूतिर्जुषतम् ...	३६
७० मनो ज्योतिर्जुषतम्	३६
मनो यजुः प्रपद्ये...	३४
मनो यज्ञेन कल्पतां	३९

मंत्र	पृष्ठ
मनो-वाक्काय-कर्माणि मे	३९
मनो हविः.....	३९
७५ मित्रस्य चक्षुर्धरणं	८८
मित्रस्य चर्पणी धृतो	८७
मित्रस्य वच्चक्षुषा...	८८
मृत्योः पदं योपयन्तः	१००
यतो यतः समीहसे...	२८
८० यत्ते दित्सु प्रराध्य...	३५
यत्ते विश्वमिदं जगत्	३८
यन्नूनमश्यां गतिं ...	८६
यन्मे छिद्रं चक्षुषो...	१८
यन्मे च्छिद्रं मनसो...	५५
८५ यस्य वातः प्राणापानौ	४३
यस्य शिरो वैश्वानरः	४३
यो वः शिवतमो रसः	२४
वाक्त आप्यायताम्...	४८
वागोजः सहौजो मयि	१७
९० वाग्यज्ञेन कल्पताम्...	४८
वाचं वदत भद्रया...	३१
शं नो देवीरभिष्टय...	२३
शं नो मित्रः शं वरुणः	२१
शं नो वातः पवतां शं	२२
९५ संगच्छध्वं संवदध्वं...	४६
सहस्रधारे वितते पवित्र	३३
साम प्राणं प्रपद्ये...	१७, ३९
सुमित्रिया न आप...	२८
सुपारथिरश्वानिव ...	३८
१०० स्तुता मया वरदा वेद	६४
स्योना पृथिवि नो भवा	२३

यजुर्वेद अध्याय ३६ के मंत्रोंके अन्य स्थानोंके पते ।

मंत्र १—ऋचं वाचं प्रपद्ये० ॥ यजु. वा. सं. अ. ३६१॥

मंत्र २—यन्मे च्छिद्रं चक्षुषो० ॥ यजु. वा. सं. अ. ३६२॥

मंत्र ३—तत्सवितुर्वरेण्यम्० ॥ ऋग्वे. ३६२।१०॥ साम० २।८।१२॥

यजु. वा. सं. ३३५॥; २२।९॥; ३०।२॥; ३६।३॥
तैत्तिरीय. सं. १।५।६।४॥ ८।४॥; ४।१।१।१॥ मैत्रायणी सं.
४।१०।३॥ १४९।१४॥ ऐतरेय ब्रा. ४।३।२।२॥; ५।५।६।१
१३।८।१९।८॥ कौशीतकी ब्रा. २३।३॥; २६।१०॥
गोपथ ब्रा. १।१।३४॥ दैवत ब्रा. ३।२५॥ माध्यं. शतप.
ब्रा. २।३।४।३९॥; १३।६।२।९॥; १४।९।३।११॥ तैत्ति० आर०
१।१।१।२॥; १०।२।७।१॥ आंध्र तैत्ति. आ० १०।३५ बृह. आ०
उप० ६।३।११॥ म० नारा. उप. १।५।२॥ मैत्री उ० ६।७।३४॥
जैमि. उप. ब्रा० ४।२।८।१॥ श्वेता० उ. ४।१८॥ आश्व. श्रौ. सू.
७।६।६॥; ८।१।१८।शांखा. श्रौ. सू. २।१०।२॥ १२।७॥; ५।५।२॥
१०।६।१७।१।१६॥ आपस्तं. श्रौ. सू. ६।१८।१॥ शांखा. गृ. सू.
२।५।१।२॥ ७।१९॥; ६।४।८॥ कौशी. सू. ९।१।६॥
साम मंत्रब्रा. १।१।६।२९॥ (खादिर गृ० सू. २।४।२१॥) आप. मं.
पा. २।४।१३॥ (आप. गृ० सू. ४।१०।९-१२॥) वौधा० ध. शा.
२।१०।१७।४॥ प्रतीक-तत्सवितुः॥ आप. श्रौ. सू. २०।२।४।६।
मान. श्रौ. सू. ५।२।४।४३॥ आप. गृ. सू. ४।११।९॥ मान. गृ.
१।२।३॥; ४।४।८॥ ५।२ ॥ तत् ॥ मान. ध० शा. २।७७॥
ऋग्विधा० १।१।२।५॥

मंत्र ४—कया नश्चित्र आ भुवद्. ॥ ऋग्वे. मंडल ४।३।१॥
अथर्व. २०।१२।४।१॥ साम० १।१६९॥; २।३।२॥; यजु० वा. सं.

य० अ० ३६ के मंत्रोंके अन्य स्थानोंके पते । १०९

२७३९॥;३६४॥तैत्ति० सं.४२११२४१२५॥मैत्रा० सं.
२१३९७-१५९१४; ४९२७-१३९११॥ काठक सं.
२११३॥; ३९१२॥ कौ० ब्रा. २७२॥ गोप० ब्रा. २४१॥
पंचविंश ब्रा. ११४२॥; १५१०१॥ दैव. ब्रा. ११४॥
ऐ. आ. प्र. ५॥ तै० आ० ४४२३॥ आश्व. औ. २१७१५॥;
५१६१॥; ७४२॥; ८१२१८॥-१४१८॥ वैतान सू०
४२१॥ लाट्या. औ. सू. ५२१२॥ आप. औ. सू. १२८५॥
१७७८॥मान. औ. ६२३॥-७११॥ मान. गृ. १५५॥ प्र-
तीक-कया नश्चित्र.॥शांखा. औ. ७२२२॥शां. गृ. ११६६॥
कया न.॥ मैत्रा. सं. ३१६४७-१९०३॥; ४१०४७-१५३५॥
काठ. सं. अश्व. ५२१॥ कया० । ऋग्विधान. २१३४॥

मंत्र ५—कस्त्वा सत्यो मदानां ॥ ऋग्वे. मं. ४३१३॥ अथर्व० २०१२४२॥
साम. २३३॥ यजु० वा. सं. २७४०॥; ३६५॥ मैत्रा० सं.
२१३९७-१५९१४॥; ४९२७-१३९१३॥ काठक सं.
३९१३॥ तैत्ति० आ० ४४२३॥ आप. औ० १७७८॥

मंत्र ६—अभी पु णः सखीनां ॥ ऋग्वे. मं. ४३१३॥ अथर्व० २०
१२४३॥ साम० २३४॥ यजु० वा० सं० २७४१॥; ३६६॥
मैत्रा० सं. २१३९७॥-१५९१८॥; ४९२७-१३९१५॥ काठक
सं. ३९१२॥ तैत्ति० आ० ४४२३॥ आप. औ० १७७८॥

मंत्र ७—कया त्वं न ऊत्याऽभि० ॥ ऋग्वे० ८१९३१९॥ साम० २९३६॥
यजु. वा. सं. ३६७॥ कौशी. ब्रा. २७२॥ गो. ब्रा. २४१॥
आश्व. औ. ५१६१॥; ७४२॥ शांखा० औ. ७२२२॥

मंत्र ८—इन्द्रो विश्वस्य राजति० ॥ यजु. वा. सं. ३६८॥ साम. १४५६॥
आश्व. औ. ८२२२॥ साम वि. ब्रा. २६७॥

मंत्र ९—शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ ऋग्वे० १९०१॥ अथ० १९१५६७॥
यजु. वा. सं. ३६९॥ तैत्ति. आ. ७१११॥-१२१॥ तै. उप.
११११॥-१२१॥ मान. औ. ६१५॥ प्रतीक-शं नो मित्रः ॥
शां. गृ. ४१८३॥ शं नो मित्रिया ॥ बृह० दे० ३७९॥

मंत्र १०—शं नो वातः पवता ५शं० ॥ यजु. वा. सं. ३६१०॥ तै. आ.
४४२१॥

मंत्र ११—अहानि शं भवन्तु नः शं० ॥ अथर्व० ७६९१॥ यजु. वा.
सं. ३६११॥ मैत्रा. सं. ४९२७-१३८११॥, तैत्ति. आ.
४४२१॥

—शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभि० ॥ ऋग्वे. ७३५१॥ अथर्व-
१९१०१॥ यजु. वा. सं. ३६११॥ आप. श्रौ. ८१४१८॥
शांखा. श्रौ० १६१३६॥ प्रतीक-शं न इन्द्राग्नी० । पेत.
आ. प्र. ३॥ शां. श्रौ. ११९१२॥ शां. गृ. ५१०३॥
ऋग्विधा० २२५१०॥ पारस्क. ध. ११३५॥

मंत्र १२—शं नो देवीरभिष्टय० ॥ ऋग्वे० १०१५॥ ऋग्वे. खिल. १०
१२७१३॥ अथर्व० १६११॥ साम० १३३॥ यजु. वा. सं.
३६१२॥ काठ. सं. १३१५॥; ३८१३॥, गोप. ब्रा. ११२९॥
तैत्ति. ब्रा. ॥ १२१११॥; २५८५॥ तै. आ० ४४२५॥
आप. श्रौ० ५४११॥; १६१४१-१६३॥ मान. श्रौ. ६१५॥
आश्व. गृ. ४७११॥ हिर० गृ. १५७॥ प्रतीक-शं नो
देवी. ॥ शां. श्रौ. ४११६- २११९; ८९७॥ लाट्या०
श्रौ० ५३१३॥ विष्णुस्मृ० ८६११॥ याज्ञव. ध. शा.
१३००॥ गृह. पा. ध. २१३५॥; ९६११-६५॥-३०९
शांख. सं. ८८॥ वृद्ध हारीत. ध. ८३४॥ औशनसध.
५३८॥ सामवि. ब्रा. २३१॥ कौशी. सू. ९७॥; १४०५॥
याज्ञ. ध. शा. १२३०॥ वृद्ध हा. ध. ८१८॥

मंत्र १३—स्योना पृथिवि नो भवा० ॥ (स्योना पृथिवि भवा०) ॥
ऋग्वे. १२२१५॥ यजु. वा. सं. ३५२१॥; ३६१३॥ मैत्रा०
सं. ४१२२-१८०१६॥ काठ. सं. ३८१३॥ तै. आ.
१०११०॥ आश्व. श्रौ. ८१४१८॥ आप. श्रौ. १६१७१७॥
आश्व. गृ. २३७॥ शांखा. गृ. १२७९; ३११६॥; ४१८५॥
साम मं. ब्रा. २२७॥ गोभिल. गृ. ३९१८॥ पार. गृ.
३२१३॥ आप. मंत्रपा० २१५२-१८८॥ (आप. गृ.
७१७३-१९११॥) हिर० गृ० २१७९॥ मान. गृ.